वीर मराठा—

बाजीराव पेशवा

लेखक—

रूपनगर की राजकुमारी, तरुणी, भक्त सूरदास, श्रवण-
कुमार, भक्त ध्रुव, शकुन्तला, चन्द्रावली,
हारमोनियम मास्टर आदि आदि
के रचयिता।

श्रीयुत् पुरुषोत्तम राव "नायक" डबीर

प्रकाशक—

चौधरी एण्ड सन्स,

पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता,

नीचीबाग, बनारस सिटी।

द्वितीय संस्करण	सन् १९३५	मूल्य १)

प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स,
पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता,
नीचीबाग, बनारस सिटी

मुद्रक—
लक्ष्मीचन्द,
सियाराम प्रेस,
बड़ी पियरी, बनारस सिटी।

१

परिचय

भारतवर्ष का दक्षिण देश महाराष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध है। पूर्व की तरफ गौण्डावन और तैलंग देश, पश्चिम की ओर अरब समुद्र, उत्तर में सूरत और सतपूरा पर्वत; दक्षिण में कृष्णा और मौलिप्रभा नामक पार्वतीय नदी विद्यमान है। यह देश लगभग एक लाख पचीस हजार वर्ग मील है, वहाँ की जन-संख्या दो-ढाई करोड़ है। विशेषकर इस देश का भूभाग पार्वतीय और ऊसर होने के कारण यहाँ के मनुष्य अन्य स्थानों के

मनुष्यों की अपेक्षा दृढ़काय परिश्रमी और अधिक बलशाली होते हैं। इस देश का जलवायु भी भारत के अन्य प्रान्तों की जलवायु से अधिक लाभप्रद है।

पर्वत श्रेणी अथवा पश्चिम घाटी नामक पर्वत ने उत्तरांश महाराष्ट्र देश को दो भागों में विभक्त कर दिया है, एक पूर्व और दूसरा पश्चिम। पश्चिम घाटी का पूर्वांश कोङ्कण नाम से विख्यात है, और कोङ्कण के उत्तराञ्चल में "जंजीरा" नाम का एक छोटा सा द्वीप है।

इस कोङ्कण प्रदेश के एक ओर भयंकर नादकारी अरब समुद्र और ऊपर दिशाओं में दिगन्त पर्वत, कालस्वरुप विराजमान हैं। इस प्रदेश का विस्तार प्रायः चार सौ मील है, परन्तु जन-संख्या का निवास सौ मील के अन्तर्गत है। इस प्रदेश की अधिकांश भूमि अरण्य श्रेणी से आच्छादित है। इसी कारण यहाँ के निवासीगण अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं। अधिवासी बहुत परिश्रमी सरल स्वभाव, शान्त चित्त और थोड़े ही में सन्तुष्ट होते हैं। वे अन्य प्रान्तों के जनों की भाँति छली, कपटी तथा दूसरे का माल अपहरण करने वाले नहीं, वरन दूसरे को दुःखी देखकर स्वयम् दुःखी होते हैं, तन-मन-धन से उनकी सहायता करना ही उनका ध्येय है।

"जंजीरा" द्वीप वर्तमान समय में 'कूलावा' जिले के आधीन है। ब्रिटिश राज्य-स्थापन के पूर्व यह द्वीप और इसके चतुर्दिक के देश हबशियों के आधीन थे। यहाँ रहने वाले हबशी 'सिद्धी' और उनको भूमि 'हबिसियान' प्रसिद्ध है।

हबसियान देश ३२५ वर्ग मील का है और आज कल इसकी वार्षिक आय तीन लाख रुपया है। राजधानी 'जंजीरा' में इस समय भारत सरकार की ओर से एक अंग्रेजी एजेण्ट निगरानी के लिये नियुक्त है।

जंजीरा के बारह मील दक्षिण में बाणकोट सागर के उत्तर तट पर सावित्री नदी के निकट 'श्रीवर्द्धनपट्ट' नाम का एक छोटा सा ग्राम है। इस ग्राम में रहने वालों की संख्या प्रायः साढ़े तीन हज़ार है। उनमें प्रायः बहुत से वेद-वेदांगी शुद्ध चित्त ब्राह्मण भी हैं। अन्यान्य स्थानों की भाँति इस ग्राम में भी आम, कट-हल, नीबू, अमरूद, नारियल, कदली, सुपारी, इत्यादि अने-कानेक वृक्ष शोभायमान हैं। विशेषतः यहाँ की सुपारी बढ़िया होने के कारण लोग उसे आदर के साथ व्यवहार में लाते हैं। यहीं तक नहीं वरन् महाराष्ट्र देश में सर्वत्र इस सुपारी की खपत है। पूर्व समय में यह नगर वाणिज्य व्यवसाय के लिये प्रधान था।

श्रीवर्द्धनपट्ट में लगभग दो सौ वर्ष पूर्व एक महाराष्ट्र ब्राह्मण गर्गगोत्रोत्पन्न 'विश्वनाथ' भट्ट निवास करते थे। इनके पिता का नाम जनार्दन भट्ट था। वह जंजीराबाद के सिद्धि सर्दार की आधीनता में श्रीवद्र्धन परगना की देख रेख करते थे और विश्वनाथ भट्ट परगना की तहसीलदारी का काम करते थे तथा कर-सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण भार भी उन्हीं पर था।

उस कठिन काल में राजा रजवाड़ों में एक अच्छे उच्च पद पर

आरूढ़ होना भयप्रद ही था, कारण नेता के बिगड़ जाने पर उधर जब उसका पक्ष अवलम्बन करते तब उसको प्रतिवादी का देश स्वाधीन करने में देर ही क्या होती! अहंकारी नेताओं के विरोध होने पर, राजाओं को कर वसूल करना अथवा प्रजा पर शासन करना असम्भव हो जाता।

विश्वनाथ भट्ट के हाथ में नेता तथा तहसीलदारी का काम होने से देश तथा राजदरबार में उनका विशेष मान सम्मान और प्रभुत्व जमा हुआ था।

विश्वनाथ भट्ट नियमानुसार अपना कार्य दत्तचित्त हो पूरा पूरा करते थे, उनका समय बड़े आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था। एक दिवस अपने चरों पुत्रों को इह लोक में छोड़ विश्वनाथ भट्ट परलोकवासी होगये। इनके तृतीयपुत्र 'जानोजी' ने अपने प्रपिता (दादा) का नाम अर्थात् जनार्दन भट्ट ग्रहण किया और पैतृकपद का अधिकार प्राप्त कर वे श्रीवर्द्धनपट्ट में रहकर निरीक्षण का कार्य करने लगे। इनके कनिष्ट भ्राता 'बालाजी' की प्रकृति कुछ और ही थी। वे बहुत परिश्रमी जीव थे। उन्होंने पैतृक सम्पत्ति के ऊपर निर्भर होकर तथा ज्येष्ठ भ्राता के आधीन रहकर जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं किया और स्वतंत्ररूप से अर्थोपार्जन का मार्ग अवलम्बन किया।

इस प्रकार अपनी विचारशैली को एक स्थान पर लक्षित कर कुछ दिवस पूर्व सिद्धीगणों की आधीनता में चिपलून ताल्लुके का कर वसूल करने का भार अपने ऊपर लिया। इसके अतिरिक्त

इन्होंने 'मीठबन्दर' नामक स्थान के 'लवण के व्यापार का भी ठोका लेकर उन्हें स्वाधीन कर लिया।

इन्हीं कारणों से बालाजी को प्रायः चिपलून जिले में ही अपना निवासस्थान बनाना पड़ा। यही वीर पुरुष अन्त में "बालाजी विश्वनाथ पेशवा" पद प्राप्त कर भारतीय इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित कर गया। दक्षिण देश में नाम के साथ ही साथ पितृ नाम संयोग करने की प्रणाली प्रचलित रहने के कारण बालाजीके नाम के साथ इनके पिता 'विश्वनाथ' का नाम भी अंकित है। इसी लिये वह बालाजी विश्वनाथपन्त के नाम से विख्यात हुए।

बालाजी विश्वनाथपन्त दूरदर्शी, वीर, तथा साहसी पुरुष थे। इनकी गुणवती पतिव्रता भार्या 'राधावांग बाई' भी इन्हीं के समान चतुरा, दूरदर्शी और साहसी रमणी थीं। कभी कभी बालाजी अपनी भार्या 'राधावांग बाई' से किसी किसी कार्य में परामर्श भी करते थे और यथेष्ट उत्तर पाकर सन्तुष्ट होते थे।



१

सन् १६९९ खृष्टाब्द में भारत रमणी राधाबाई बाई के गर्भ से पुस्तक के नायक वीर शिरोमणि बाजीराव बल्लाल का जन्म हुआ। इस सुसंबाद को सुनकर बालाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। प्रायः यह देखने में आता है कि बाल्य जीवनके संकट भविष्य जीवन के महत्व को प्रकट कर देते हैं।

पुत्र प्राप्ति

बाजीराव के जीवन में भी इस दैवी दुर्विपाक का ब्यतिक्रम हुआ। बाल्यावस्था में ही बाजीराव को विपत्तिसागर की विषम लहरों

की थपेड़ें खानी पड़ीं थीं। भविष्य में आनेवाली आपदाओं का नग्न चित्र बालक बाजीराव के सम्मुख उपस्थित था।

चौथे वर्ष में पदार्पण करते ही बाजीराव को पिता के साथ अपनी प्यारी जन्मभूमि का परित्याग कर भागना पड़ा। केवल इतने से ही भाग्य-परीक्षा समाप्त नहीं हुई। शिशु के ललाट पर अङ्कित दुःख की लकीरें अभी अवशेष थीं। उसे संसार में आने क सुख प्राप्त करना था, अतः भागने के उपलक्ष में शिशु बाजीराव को कारावास में अपना गृह नियत करना पड़ा। कालकी अघटित घटना के पाश में आबद्ध होकर पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी।

बाजीराव के जीवन में यह पहला अवसर था। परन्तु वीर शिशु बाजीराव माता के उपदेश द्वारा शैशवकाल में ही एक कट्टर तरुण बनाया जा चुका था। राधावांग बाई के किस्से और कहानियों ने उस बालक के कोमल हृदय को स्वाभिमानी बना दिया था। अस्तु!

इस समय जञ्जीरा देश का आधिपत्य कासिमखाँ के हाथ में था। उसकी वीरता-शूरता से प्रसन्न होकर मुगल-सम्राट औरंगजेब ने उसे मुगलवाहिनी का अधिष्ठाता नियुक्त कर दिया था। फलस्वरूप कासिमखाँ एक उच्चासन पर आरूढ़ होकर मनमाना अत्याचार करने लगा। छत्रपति वीरकेशरी शिवाजी माहाराज के समय से ही कासिमखाँ महाराष्ट्रों का अहंकार चूर्ण करने का प्रयत्न करता आता था और महाराष्ट्र सेनापतियों के साथ प्रायः उसका युद्ध भी हुआ करता था। हिन्दू प्रजा उसके अत्याचार

से त्राहि त्राहि कर रही थी। एक पल भी सुख शांति पूर्वक बैठे रहना उनके लिये कठिन होगया था।

जिस समय का यह वृत्तान्त है उस समय समुद्रवर्तीय स्थानों पर आधिपत्य स्थापित करने के निमित्त, छोटे छोटे जहाजों के अधिनायक "कान्होंजी" आंग्रे के साथ सिद्धियों की शत्रुता का श्रीगणेशाय नमः आरम्भ हो रहा था।

जिस समय शिशु बाजीराव तोतली वाणी से अपने सहचर शिशु मण्डली के साथ बाल्यक्रीड़ा का आनन्द उपभोग कर रहे थे उसी समय कन्होंजी आंग्रे और सिद्धि कासिम खाँ का वादाविवाद प्रचण्ड अग्नि के सदृश प्रज्वलित हो उठा। इधर कासिमखाँ कान्होंजी पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था और उधर कान्होंजी सिद्धि कर्मचारियों को द्रव्य द्वारा वशीभूत कर अपनी मण्डली में मिला लेने का प्रयत्न कर रहे थे। दोनो चतुर प्रहरी अपनी अपनी ताक में लगे थे।

जब कि व्यक्तिद्वय शनैः शनैः अपने अपने षड़यन्त्र में संलग्न थे तब बालाजी ने स्वजातीय मंगल-कामनाके हेतु गुप्त रीति से कान्होंजी आंग्रे का पक्ष अवलम्बन कर उन्हें सहायता देना निश्चय किया। इस समाचार को सुनकर सिद्धि कासिमखाँ आग बबूला हो उठा। उसने ब्राह्मणकेतु को पूर्णरूपेण रसातल भेजने का विचार अपने हृदय में दृढ़ कर लिया, सिर्फ विचार ही नहीं वरन् उस दुर्धर्ष कासिम ने श्रीवर्द्धनपट्ट के भट्टवंश को सपरिवार बन्दी कर लेने की आज्ञा दे दी!

कासिम की आज्ञा पाकर उसके सहकारी बेचारे भट्टवंश के परिवार को पकड़ने के लिये चल पड़े। सर्व प्रथम बालाजी के ज्येष्ठ भ्राता जनार्दनजी, कासिम के सम्मुख बन्दीरूप में उपस्थित किये गए, अत्याचारी कासिमखाँ ने बिना किसी प्रकार का परामर्श तथा विचार किये ही निर्दोषी ब्राह्मण को इस लोक से उठा देने की भीषण आज्ञा दी। जनार्दनजी के इष्ट मित्रगण प्राणदण्ड की आज्ञा सुनकर सिहर उठे। उनकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह उठी, परन्तु व्यर्थ, उस करुण-जलधारा का प्रभाव कासिम जैसे नर पिशाच पर होना असम्भव था। मुगल-वंश को कलंकित करनेवाले इस कुलांगार ने उनका हाथ पाँव बँधवा और एक सन्दूक में बन्दकर महासागर के गर्भ में डुबवा दिया।

इस भीषण अत्याचार से अत्यन्त भयभीत हो बालाजी विश्वनाथ ने अपनी और अपने वंश की मर्यादा रखने के हेतु अत्याचारी सिद्धियों की भूमि परित्याग कर सपरिवार बागकोट के दक्षिण 'बयलास' ग्राम में आश्रय लिया।

पवित्र भूमि बयलास ग्राम में 'हरि–महादेव' भानू नामक एक सद्गुणी सज्जन द्विज रहते थे। हरि–महादेव भानू के साथ बालाजी का पहले ही से मित्रभाव था। बालाजी विश्वनाथ ने उनसे मिल अपने–भविष्य के सम्बन्ध में परामर्श कर यह निश्चित किया कि कोङ्कण परित्यागकर सपरिवार किसी अन्य स्थानमें जाकर नूतन व्यापार में प्रविष्ट होना ही उत्तम और सुख शान्ति दायक है।

'हरि-महादेव' भानू की पारिवारिक स्थिति अच्छी न थी। इसलिये उन्होंने भी सपरिवार बालाजी विश्वनाथ के साथ परदेश गमन करने का निश्चय किया। दो तीन दिवस के अनन्तर दोनो कुटुम्बियों ने अन्य स्थान के लिये यात्रा आरम्भ कर दी।

भानूजी और बालाजो विश्वनाथ ने सपरिवार सानन्द थोड़ा सा ही मार्ग क्रमण किया होगा कि इतने में पुनः उनके शीश पर दुःख के बादल मड़राने लगे। अत्याचारी कासिमखाँ की निर्दयी सेना ने दोनो विप्र मण्डली को सपरिवार बन्दी कर लिया और 'अञ्जनबेल' नामक दुर्गमें भेज दिया।

'अञ्जनबेल दुर्ग' में दोनों कुटुम्बियों को, दुर्गेश सिद्धी के आदेशानुसार २५ दिन तक महान् यन्त्रणायें भोगनी पड़ी थीं। इतनी असह्य यन्त्रणायें भोगते हुये भी हरिमहादेव भानू ने बुद्धि और साहस को छोड़ नहीं दिया था। उनके मस्तिष्क में दिन रात इस कठिन कारागार से मुक्त होने की विचार-धारा प्रवाहित थी। वे बालाजी से इसी सम्बन्ध का विचार करते रहते थे।

एकदिन हरिमहादेव और इनके भ्राताओं ने अत्यन्त परिश्रम और बुद्धिचातुर्य्य से अञ्जलबेल दुर्ग के किलेदार को वशीभूत कर इस कठिन कारावास से मुक्ति लाभ किया। इन्हीं असाधारण विप्रों के बुद्धिबल से बालाजो विश्वनाथ सपरिवार इस महान् कठिन दुर्ग से बाहर होकर सकुशल 'सासवाड़' में प्रवेश कर पाये थे।

दुर्ग से बाहर निकल कर हरि-महादेव भानू और बालाजी ने सीधे पूना का मार्ग अवलम्बन किया और 'सासवाड़' ग्राम के एक

सभ्य सज्जन विप्र आवाजीपन्त पुरन्दरे का आश्रय ग्रहण किया। आवाजीपन्त पुरन्दरे तात्कालीन महाराष्ट्र देश की राजधानी 'सितारा' नगर में इन लोगा को साथ लेकर चले गये।

इस समय देश की अवस्था अत्यंत शोचनीय थी, जहाँ तहाँ उपद्रवियों का क्रम लगा था। पूर्व महाराष्ट्र में तो विप्लव के घन-घोर बादल छा रहे थे। पग पग पर युद्धादिकों के शब्द कर्ण-गोचर हो रहे थे। प्रजावर्ग अशान्ति के सागर में बार बार गोते लगा रही थी।

वीरकेशरी महाराज छत्रपति शिवाजी के परलोक गमन के पश्चात् मुगल सम्राट् क्रूर औरंगजेब ने टिड्डीदल की भाँति सेना लेकर महाराष्ट्र प्रदेश पर चढ़ाई किया था। श्री शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी ने इन हिंस्त्रक टिड्डियों को रोकने का यथा-शक्ति प्रयत्न किया और मुगल सैन्य को अपनी वीरता का परिचय दिया। परन्तु व्यर्थ। असख्य सैन्य के सम्मुख 'हर हर महादेव के नाद करने वाले' मुट्ठी भर महाराष्ट्र वीर विजय जयमाल पहन न सके। दस, दस, पन्द्रह, पन्द्रह, यवनों को धराशाई कर स्वयं भी माता वसुन्धरा की गोद में अपना शरीर न्योछावर करने लगे। अन्ततः उन्होंने अपनी प्यारी जन्मभूमि को पराधीनता की बेड़ी से मुक्त करने के लिये हँसते हँसते प्राण विसर्जन कर दिये। दैव की इच्छा प्रतिकूल होने के कारण वीर शम्भाजी अकस्मात् मुगलों के हाथ पकड़े गये और मुगलों की आधीनता न स्वीकार करने के कारण उन्हें अपने प्रिय प्राणों की आहुती देनी पड़ी। नराधम

औरंगजेब ने स्वतन्त्रता की जञ्जीर में न बँधने वाले महाराष्ट्र प्रदेश के सिंह की आँखे निकलवा लीं और जिह्वा कटवा कर, सदा के लिये उनकी इति श्री कर डाली। उनकी पतिव्रता अर्धाङ्गिणी 'यशोदावांग बाई, और पुत्र कुमार शाहूजी मुगल सम्राट् के नज़रबन्द हुए।

इस घटना के थोड़े दिन पश्चात् महाराज शिवाजी के छोटे पुत्र, शम्भाजी के कनिष्ठ भ्राता महाराज 'राजाराम' पिता के सिंहासन पर सुशोभित हो भ्रातृहन्ता अहंकारी औरंगजेब से बदला लेने के लिये कटिवद्ध हुए। परन्तु उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। असमय में ही सन् १७०० में उनका परलोकवास हो गया।

महाराजा राजाराम के परलोकवास हो जाने पर उनकी भर्य्या 'महाराणी' तारावांग बाई ने महाराष्ट्र देश के शासन का भार अपने ऊपर ले लिया।

इधर सम्राट् औरंगजेब ने अनुमातः यह निश्चय कर लिया कि महाराजा राजाराम के स्वर्गवासी होने से मराठे भयभीत होकर हताश हो जाँयगे और शान्ति धारण कर चुप बैठेंगे। औरंगजेब के मस्तिष्क की यह बड़ी भारी भूल हुई जो ऐसा विचार उत्पन्न हुआ। महाराष्ट्र वीरगण उद्भ्रान्त नहीं हुए। वीराङ्गणा महामाया तेजस्वी तारेश्वरी के वीरोचित उत्तेजनापूर्ण भाषण से मराठे वीर क्रुद्ध सर्प की भाँति फुँफकार कर उठ खड़े हुए और वीरोन्मत्त हो द्विगुण उत्साह से नीच अरंगजेब को ससैन्य महाराष्ट्र भूमि से एक बारगी विताड़ित करने में अग्रसर हुए। सारे महाराष्ट्र प्रदेश में महाराणी तारा के उत्तेजनापूर्ण भाषण ने अग्नि पदीप्त कर दी।

उस अग्नि की ज्वाला से तप्त महाराष्ट्र वीर अस्त्र शस्त्र सहित युद्ध भूमि में आ डटे और तलवारों के वार के साथ ही साथ आँखों से अग्नि की ज्वाला फेंकते हुए औरंगजेब का मद-मर्दन करने लगे।

उस समय एक भी महाराष्ट्रवीर किसी भाँति भी एक अश्व और तेजस्वी चन्द्र के समान चमकता हुआ भाला यदि पा जाता था, तो वही भागते हुए मुगल सिपाहियों का पीछा कर उसे यमलोक पहुँचा देता था। "हरहर महादेव" के गगन भेदी नाद से क्षुद्र यवनों का हृदय काँप उठता था और ध्वनि के साथ ही साथ दिग् दिगन्त से प्रतिध्वनि होने लगती थी। रण—चण्डी तारेश्वरी के चक्षुओं की भयंकर अग्निज्वाला से, मुगल सैन्य भस्मीभूत होने लगी थी—हाहाकार मच गया था। अपने पति के ज्येष्ठ भ्राता को स्वाधीन करना ही उस वीर भारत-रमणी का एकमात्र लक्ष्य था।

जिस समय बालाजी विश्वनाथ 'सासवाड़े' में पहुँचे, उस समय ताराबाई बाई के रक्षक रामचन्द्र पन्त, शंकरजी नारायण और सेना नायक धाननन जी यादव आदि महाराष्ट्र वीरों के तेज से समग्र दक्षिण प्रान्त भयभीत हो रहा था। विधर्मी मुगल महाराष्ट्र वीरों का रौद्ररूप देखकर पराजित हो इधर उधर पलायन करने लगे। जिन जिन देशों को मुगल सम्राट् औरंगजेब ने अपने दमन नीति के आधार पर हस्तगत किया था उन प्रदेशों को महाराष्ट्र वीरों ने पुनः अपने अधिकार में कर लिया।

ऐसे समय में वीर और दूरदर्शी व्यक्ति की विशेष रूप से आवश्यकता थी। वहाँ उसके लिए कार्य तथा पद का अभाव न था।

बालाजी विश्वनाथ उद्यमशील और चतुर व्यक्ति थे, वे इस मौके को कब छोड़ने वाले थे। एतदर्थ सितारा नगर की ओर चल पड़े।

राजधानी सितारा में पहुँचते ही बालाजी विश्वनाथ ने महादेव कृष्ण जोशी नामक एक विप्र सज्जन से अपनी मनोभिलाषा प्रकट की और जोशीजी के प्रयत्न से, महारानी तारावांग बाई के प्रतिनिधि परशुराम त्र्यम्बक की कृपा से मालगुजारी के निरीक्षण करने का कार्य बालाजी विश्वनाथ तथा उनके सहचरों को प्राप्त हुआ।

बालाजी विश्वनाथ तथा अम्बाजी के प्रतिनिधि महोदयने इनकी कार्यदक्षता देखकर सेना नायक धनानजी यादव की अधीनता में राजस्व विभाग के 'कारकुन' पद पर सौ मुद्रा वार्षिक वेतन पर इन्हें नियुक्त कर दिया।

इसके पश्चात् सन् १७०६ ई० में हरिमहादेव भानू के कनिष्ठ भ्राता रामा जी महादेव, शंकर जी नारायण की कृपा द्वारा उन्हीं के निकट लेखक के काम पर नियुक्त हुए। शेष भ्राता बालाजी विश्वनाथ के निकट ही रहने लगे।

इस प्रकार विपत्ति, संकट और स्वदेश परित्याग का दुःख झेलते हुये बालाजी विश्वनाथ अपने अभिष्ट स्थान पर जा पहुँचे।





बाल्यशिक्षा, रणकौशल, पितृवियोग

विपत्ति के बादलों का पूर्णरूपेण छिन्न भिन्न हो जाने पर राजधानी सितारा में शिशु बाजीराव का पठन पाठन आरम्भ हुआ। बालाजी विश्वनाथ कारकुन के होनहार पुत्र ने अल्प समय में ही विद्याध्ययन में सुख्याति प्राप्त कर ली। परन्तु पठन पाठन में दक्षता प्राप्त कर लेने पर ही उस समय छात्र इस कार्य से मुक्त नहीं हो पाता था वरन उसे लिखने पढ़ने के अतिरिक्त शारिरिक विद्या का भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था।

प्राचीन समय के वीर और बुद्धिमान लोग मानसिक विकास की अपेक्षा शारीरिक शक्ति की ओर विशेष रूप से ध्यान देते थे। वे अपने पुत्र पुत्रियों की मानसिक शिक्षा से कहीं अधिक शारीरिक शक्ति का ध्यान रखते थे और वीर बनाने की चेष्टा किया करते थे। विशेषतः इसका भार माता के ही ऊपर रहता था। रात्रि हो जाने पर मातायें उन्हें वीरों की कहानियाँ सुनाया करती थीं। कहानी सुनते सुनते बालक सो जाता था। इसी प्रभावानुसार छत्रपति शिवाजी, बाजीराव पेशवा इत्यादि अनेक वीरगणों ने हिन्दू धर्म की मर्यादा रख उसे जीवित रखा। पुस्तकीय विद्या कण्ठाग्र कर डिग्री (उपाधि) प्राप्त करने की अपेक्षा सिंहोचित वीर-पद प्राप्त करना, उस समय राजघराने के कुमारों को अधिक प्रशंस-नीय था। विशेष क्या जिस समय बाजीराव का जन्म हुआ था, उस समय देशमें वीरत्व की महत्ता थी। इसी कारण विशेष से बालाजी ने अपने पुत्र को पुस्तकीय विद्या के साथ ही साथ घोड़े पर चढ़ना, तलवार चलाना, भाला चलना, लक्ष्यभेद करना तैरना, सैन्य चक्रव्यूह में प्रविष्ट होकर निकल आना इत्यादि अनेक विद्या में पारांगत बना दिया था। कभी कभी वे अपने पुत्र की परीक्षा भी ले लिया करते थे।

राजधानी सितारा में आकर राज्यकर्म में प्रवृष्ट होने के समय से ही बालाजी को अपना समस्त जीवन युद्ध करने में ही व्यतीत करना पड़ा था। पुत्र को पूर्ण रीति से वीर शिरोमणि बनाने की उत्कट अभिलाषा से प्रायः वे सभी युद्ध में अपने साथ ले जाते थे

और रण-भूमि में वीरों के शक्ति-शाली वाहु से संचालित कृपाण और भालों के वार को दिखा कर उसे युद्ध विद्या में पण्डित बनाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अल्प समय में ही बाजीराव समर शास्त्र में भिज्ञ होगये और साथही साथ उनमें वीरत्ता, शूरता तथा साहस का संचार होने लगा। समर-भूमि में चमचमाती हुई तलवार के प्रहार, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिग्घाड़ और गगन भेदी रण बाँकुरों के घोरनाद का श्रवण करते करते बाजीराव का हृदय पाषाण की भाँति कठोर हो गया था।

जिस समय बालाजी धनाननजी की कृपा द्वारा कारकुन पदपर नियुक्त किये गये थे, उस समय अपने प्राणों की ममता छोड़ कर समस्त वीरों ने 'हरहर महादेव' के हृदय विदीर्ण करने वाले भयंकर नाद से मुगल सम्राट औरंगजेब का सिंहासन हिला दिया। प्रशान्त महासागर की भांति महाराष्टीय सेना के गगनभेदी सिंहनाद से उसका हृदय काँप उठा। रण-बाँकुरे महाराष्ट्रों के प्रचण्ड आक्रमण से नितान्त क्लान्त होकर, औरंगजेब को स्वर्गवासी शंभा जी के चिरंजीव 'शाहू' जी को बन्धन से मुक्त कर देना पड़ा था। केवल इतने से ही कार्य समाप्त नहीं हुआ अपितु महारष्ट्र वीरों को शान्त करने के निमित्त उसे समस्त राजस्व का दशमांश 'स्वत्व' की सनद भी देनी पड़ी थी।

शाहूजी के स्वदेश में प्रविष्ट होते ही राज्याधिकार प्राप्ति के लिये माता तारावांगबाई और पुत्र शाहू का गृहयुद्ध आरम्भ हुआ। प्रधान सेनापति धनाननजी ने शाहूजी को राज्य का पूर्ण उत्तरा-

धिकारी समझकर उन्हें ही राज्यप्राप्त कराने में सहायता देने का निश्चय किया। फिर क्या था? सन् १७०७ ई० में महारागी तारेश्वरी को राज्य शासन की बागडोर शाहूजी के हाथ में देनी पड़ी। धनाननजी आदि वीरों की विपक्षता से सरलतया उनकी पराजय हो गई।

महाराष्ट्र राज्य में क्षण-क्षण पर जो विप्लव के बादल उठ रहे थे वे महाराज शाहूके सिंहासनारूढ़ होते ही कतिपय शान्त होगये।

इधर धीरे २ बालाजी विश्वनाथ को राजस्व विभाग में अपनी योग्यता प्रगट करने का अवसर प्राप्त होने लगा। दूरदर्शी महाराष्ट्र अपने चातुर्य द्वारा एक एक पद प्राप्त करने लगा। उनमें असीम कार्य कुशलता होने के कारण उन्हें राजस्व का विशेष कारबार देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने कृषकों को उत्साहित कर, सर्व प्रकार उनकी सहायता कर उन्हें उन्नति के मार्ग का दिग्दर्शन कराया और साथ ही साथ राज्य के मालगुजारी की भी बृद्धि की।

प्रधान सेनापति धनाननजी यादव, बालाजी विश्वनाथपन्त की कार्यकुशलता का परिचय पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके हितचिन्तक बन गये। समस्त पदाधिकारी गण बालाजी को एक उच्च सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। महाराज शाहू भी इनकी कार्य तत्परता से अपरिचित न थे।

उन्नति का पथ प्रदर्शित करने वाले बालाजी को कृषकगण

देवता समान मानते थे तथा नियमित समय पर मालगुजारी पहुँचा देते थे। उन्हें कृषकों पर मालगुजारी वसूल करने के लिये किसी दण्ड की आवश्यकता नहीं होती थी। जनता उनपर प्राण विसर्जन करने के लिये सदा कटिबद्ध रहती थी। अस्तु!

महाराज शाहूजी का दयार्द्र भाव होने के कारण बालाजी को अनेक बार उनके सम्मुख उपस्थित होने का सुअवसर प्राप्त होता था और ऐसे अवसर पर बालाजी अपनी योग्यता का परिचय भी देते थे।

सन् १७१० ई० के जून मास में महाराज शाहू के प्रधान सेना-पति–महाराष्ट्र राजस्व के हितचिन्तक वीर धनाननजी यादव का स्वर्गवास हो गया। इस बीर पुरुष की मृत्यु से महारष्ट्र देश शोका-तुर हो उठा। महाराज शाहू इस वज्रापात से अधीर हो उठे। परन्तु बालाजी का स्मरण आते ही उनका हृदय कुछ शान्त हुआ और उन्होंने तत्काल बालाजी विश्वनाथ पन्त को समस्त राजस्व विभाग के आय व्यय का भार सौंप दिया। धनाननजी के पुत्र चन्द्रसेन रावके अधिकार में केवल सैन्य विभाग का भार दिया गया। अब बालाजीके ऊपर सेनापति चन्द्रसेनरावका कुछ प्रभुत्व न रहा।

इसलिये चन्द्रसेन राव के हृदय में बालाजी विश्वनाथ पन्त के प्रति प्रति-हिंसा की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। बालाजी को देखते ही उनका शरीर क्रोध से रक्तवर्ण हो जाता था और वे इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए अवसर ढूँढने लगे।

इस प्रकार चन्द्रसेन राव का क्रोध बालाजी पर दिनों दिन उग्ररूपसे बढ़ता ही जाता था। वह अवसर का अनुसन्धान कर ही रहा था कि १७११ ई० में एक दिन आखेट करते समय अकस्मात् बालाजी के किसी सिपाही द्वारा चन्द्रसेन राव का भृत्य घायल हो गया। चन्द्रसेन राव अवसर का अनुसन्धान तो करही रहे थे, इस उपयुक्त अवसर को पाकर बालाजी से प्रतिशोध लेने के लिए उसने सहसा ससैन्य बालाजी पर आक्रमण किया !!

जिस समय चन्द्रसेन राव ने ससैन्य बालाजी पर आक्रमण किया था उस समय बालाजी अपने कुटुम्बियों के साथ साँसारिक विषय पर गोष्ठी करते जा रहे थे। इस आकस्मिक घटना के विघटित होने से पहले तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु शीघ्र ही इसका कारण समझ लिया। उस समय उनके साथ उनके कुटुम्बी-ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव, कनिष्ठ चिमणाजी आप्पाजी, भ्राता अम्बाजी पन्त और कुछ इने गिने वीर योद्धा थे।

बालाजी ने बढ़ती दरिया के समान चन्द्रसेनराव की सेना को अपनी ओर आते देख पलायन करने का ही उपाय अवलम्बन किया और वे सहचरों सहित 'सासवाड़' नगर के पुरन्दर नामक दुर्ग में जा उपस्थित हुए परन्तु दैव दुर्विपाक से उन्हें यहाँ आश्रय न मिल सका। दुर्ग के प्रधान नायक ने अपनी इच्छा होते हुए भी सेना-पति चन्द्रसेन राव के भय से किले में स्थान नहीं दिया। इतने समय में चन्द्रसेन राव की सेना सन्निकट आ पहुँची परन्तु बालाजी विचलित नहीं हुए। इस विकट समस्या को हल करने में महा-

राष्ट्र वीर बालाजी का मस्तिष्क शिथिल न था। उन्होंने तत्क्षण एक और उपाय सोच निकाला और सहचारों के साथ उसी ओर चल पड़े।

सेनापति की सेना से घबड़ा कर बालाजी स्थानार्थगिरी दुर्ग की ओर बढ़े। मार्ग में इन लोगों ने अत्यन्त चेष्टा से चार पाँच सौ युद्ध विशारद वीरों को अपने पक्ष में मिलाया और उन्हें साथ लेकर बालाजी विश्वनाथ पन्त 'निरा' नदी के तट पर सेनापति चन्द्रसेन राव के सम्मुख जा डटे। दोनों दलों में युद्ध आरम्भ हो गया। मुट्ठी भर वीरों ने भली भाँति अपनी वीरता का परिचय दिया। भट्ट वंश के वीर बालाजी ने एक बार तो अवश्य चन्द्रसेन के दाँत खट्टे कर दिये परन्तु थोड़े समय में ही बालाजी को रणभूमि छोड़कर भागना पड़ा क्योंकि चन्द्रसेन राव के असंख्य वीरों के सम्मुख कहाँ तक टिक सकते थे। अतः उन्होंने पराजय स्वीकार कर पालायन का मार्ग अवलम्बन किया। चन्द्रसेन राव ने अपने शत्रु को रण क्षेत्र से भागते देख पीछा किया।

इस प्रकार शत्रु से बचते हुए बालाजी विश्वनाथ पन्त पाण्डव दुर्ग में पहुँचे। परन्तु थोड़े समय में ही सेनापति चन्द्रसेन राव के सैनिकों द्वारा दुर्ग में बन्दी बना लिये गये।

जब महाराज शाहू जी ने राजस्व जासूस द्वारा अपने विश्वस्त कर्मचारी के विपद का समाचार सुना तो उनका हृदय सेनापति चन्द्रसेन के प्रति क्रुद्ध हो उठा और उन्होंने हलकारे द्वारा पत्र भेज कर चन्द्रसेन राव को राजधानी सितारा में शीघ्र लौट आने की

आज्ञा दी। बालाजी विश्वनाथ पर महाराज की विशेष कृपा देख कर चन्द्रसेन राव का क्रोध बालाजी पर और भी द्विगुणित हो उठा और साथही साथ वे महाराज शाहू से भी असन्तुष्ट हो गये। ऐसे समय में उन्होंने अपने सम्पूर्ण वीरों को पक्ष में मिलाये रखने में तिल मात्र भी आगा पीछा नहीं किया और स्पष्ट-हृदय से उसी हलकारे द्वारा महाराज शाहू के पास यह लिख भेजा कि 'यदि बालाजी सीधी तरह से हमारे हाथ में न सौंप दिये जायँगे तो हम शत्रु पक्ष अवलम्बन कर इस समय का प्रतिशोध किसी अन्य समय पर आप से लेंगे।'

अपने आश्रित सेनापति की ऐसी उद्दण्डता देखकर महाराज शाहूजी प्रचण्ड क्रोध के वशीभूत हो चन्द्रसेन राव का मद-मर्दन करने के लिए हैवतराव को विशाल सेना के साथ भेजा।

महाराज की आज्ञा पाकर वीर हैवतराव ससैन्य चन्द्रसेन राव को पराजित कर बन्दी बनाने के लिये चल पड़े और थोड़े समय में ही चन्द्रसेन राव के सम्मुख उपस्थित हो युद्ध के लिये अह्वान किया। दोनों पक्ष की सेनाओं में प्रलयंकारी युद्ध हुआ और अन्त में हैवत-रावने सेनापति चन्द्रसेन राव को पराजित किया। बालाजी विश्वनाथ पन्त इस संकट से मुक्त हो कर अपने दोनों पुत्रों के साथ राजधानी सितारा में लौट आये।

इधर रण-क्षेत्र से पराजित हुआ चन्द्रसेन राव भागकर रानी ताराबाई बाई का आश्रित बना। इसके पश्चात् उसने मुगल सूबेदार निज़ामुलमुल्क (हैदराबाद) के पास अपनी भावी विपत्ति की

सूचना भेजकर गुलामी की जंजीर में अपने को अवरुद्ध करना श्रेष्ठ समझा।

सेनापति चन्द्रसेन राव का अपने अधीनस्थ सेना सहित शत्रु पक्ष में सम्मिलित हो जाने से महाराजा शाहू की सेना थोड़ी होगई। रानी ताराबांग बाई सुयोग अवसर समझकर चन्द्रसेन की सहायता से अनेकों युक्तियों द्वारा महाराज शाहू के बचे-खुचे अन्य सर्दार सामन्तों को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न करने लगीं। ऐसे समय में यदि महाराष्ट्र वीर बालाजी विश्वनाथ पन्त अपने असीम साहस तथा बुद्धि का परिचय न देते तो अवश्य ही महाराज शाहू को विपत्ति ग्रसित होना पड़ता। बालाजी ने अपने अद्भुत बुद्धि चातुर्य द्वारा दर्बार के सर्दार सामन्तों को रानी ताराबांग बाई का पक्ष अवलम्बन करने नहीं दिया और साथ ही साथ उन्होंने बहुत से बलिष्ट तरुण पैदल वीर और युद्ध विशारद अश्वारोहियों को एकत्रित कर महाराज शाहू की सेना विभाग में प्रविष्ट कर उस न्यूनता की पूर्ति कर दी।

इस घटना के पूर्व ही बालाजी विश्वनाथ पन्त ने कृषकों को उन्नति का मार्ग प्रदर्शित कराकर राज कोष के वृद्धि का पथ साफ कर दिया था तथा और जो जो कार्यभार उनपर निर्भर था उसे भी पूर्ण रूप से चेष्टा कर सम्पूर्ण किया। इसके पश्चात् वे महाराष्ट्र देश के मंगलार्थ अन्य उपद्रवों को शान्त करने में अग्रसर हुए।

इस समय रानी ताराबांग बाई ने पर्याप्त सेना संचय कर महा-महाराज शाहू को युद्ध के लिये आह्वान किया। महाराज शाहू

रानी तारावांग बाई को यथोचित दण्ड देने के लिये वीर सैनिकों के साथ रण-भूमि में जा उपस्थित हुए। दोनों दलों में घनघोर युद्ध हुआ और अन्त में महाराज शाहू की सेनाने तारावांग बाई की सेना को पराजित किया।

रानी तारावांग बाई महाराज शाहू से पराजित होकर रण-क्षेत्र से भाग निकलीं और कोल्हापुर में आकर दक्षिण प्रान्त में एक नवीन राजधानी स्थापित कर उन्होंने अपने पुत्र को 'छत्रपति' की उपाधि से राजा घोषित किया।

इस घटना से महाराष्ट्र शूर-सामन्त सर्दार छिन्न-भिन्न होगये। कितने महाराज शाहू के पक्ष में जा मिले और कितनों ने महाराज कोल्हाधिपति का आश्रय ग्रहण किया। कुछ मुगलसम्राट औरंग-जेबके गुलामी की जञ्जीर में जा बंधे। इतना ही नहीं वरन किसी किसी सर्दार ने स्वयं अपने को राजा घोषित कर दिया।

स्वतंत्रता देवी के उपासक सर्दारों के अत्याचार से प्रजा पीड़ित हो उठी। लूट मार का बाजार गर्म हो गया। त्राहि ! त्राहि !! की पुकार से दिग दिगान्तर प्रतिध्वनित होने लगा। दुःख के बादल जो छिन्न-भिन्न होकर शान्त हो गये थे वह पुनः एकत्रित होकर अकाश पर मड़राने लगे। इन अत्याचारी सर्दारों में से दामाजी खेरात और उदयजी चौहान प्रधान थे। उदयजी के प्रचण्ड बाहुबल से भयभीत होकर महाराज शाहू को अपने देश के एक अंश से उसे चौथ प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करना पड़ा था।

एक ओर कान्हों जी आंग्रे नामक सर्दार कोल्हाधिपति का पक्ष

ग्रहण कर महाराज शाहू के अधीनस्थ 'कल्याण' देश को विजय करने का प्रयत्न कर रहे थे। दूसरी ओर कृष्ण राव खटाउकर एक ब्राह्मण (उपाधिधारी राजा) ने विद्रोह का झंडा उठाकर राज्य में घोर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त दर्बार के छोटे मोटे सर्दार सामन्त गण भी महाराज शाहू की आधीनता में न रह कर स्वतन्त्र होने की कानाफूसी कर रहे थे।

ऐसे समय जब कि देश में चारो ओर से तूफान उठ रहे थे, स्वतन्त्रता के पुजारी एक नहीं, दो नहीं, अनेक सम्मिलित होकर महाराज शाहू के विपरीत डङ्का पीट रहे थे, स्वदेश में सुख शान्ति की स्थापना करना असम्भव था। परन्तु विद्रोहियों को दमन करने की प्रचण्ड प्रतिज्ञा कर बीर शिरोमणि बालजी बिश्वनाथ पन्त ने महाराज शाहू की आज्ञा से कृष्णराव खटाउकर को राज्य सूत्रमें अवरूद्ध करने का प्रयत्न किया और उसी समय सचिव नारायण शंकर दामाजी खेरात को, और पेशवा भैरव पन्त पिंगले कान्हों जी आंग्रे को पराजित करने के लिये अग्रसर हुए।

इस युद्ध यात्रा में बालाजी विश्वनाथ पन्त ने ही सफलता प्राप्त की। उन्होंने कृष्णराव खटाउकर को 'औंध' नामक स्थान पर पराजित किया। खेरात दामाजी ने सचिव नारायण शंकर को और पेशवा भैरव पन्त पिंगले को आंग्रे ने पराजित किया। दोनों वीर अपने अपने प्रतिद्वन्दियों द्वारा बन्दी हुए।

इस युद्ध में बालाजी विश्वनाथ पन्त को विशुद्ध रण-कौशल तथा असीम बुद्धि चातुर्य का परिचय देना पड़ा था क्योंकि प्रति-

द्वन्द्वी कृष्णराव खटाउकर भी युद्ध विद्या और बल बुद्धि में पारंगत था। परन्तु, शत्रु को पराजित करते ही उन्हें अन्य दूसरे शत्रुओं को दमन करने के लिये अग्रसर होना पड़ा था।

कान्होंजी आंग्रे पेशवा भैरव पन्त पिंगले को परास्त एवं आधीन करके ही चुप नहीं हुए वरन् उनका हृदय और कुछ प्राप्त करने के लिए लोलुप हो उठा, अतः उन्होंने बड़ी बीरता द्वारा लोहगढ़ तथा अन्य स्थान अपने अधिकार में कर लिया।

अनिश्चित काल तक रण-भूमि में रहने के कारण बालाजी का शरीर एवम् उदर फूल गया था परन्तु वीर बालाजी ने अपनी शारीरिक अवस्था की ओर तनिक भी ध्यान न देकर कान्होंजी आंग्रे के दमन करने का भार अपने ऊपर लिया और पुनः युद्ध के लिये प्रस्थान किया।

बीस हजार सेना का एक समूह लेकर बालाजी विश्वनाथपन्त कान्हों जी आंग्रे को ध्वंस करने के लिये चल पड़े और अपने वीरत्व से समस्त शुत्रु सेना का संहार कर लोहगढ़ प्रभृति स्थानों को शत्रु के अधिकार से छीन लिया। इसके पश्चात् उन्होंने महाराज शाहूजी की आधीनता स्वीकार करने के लिये युक्तिपूर्ण एक पत्र कान्हों जी के सन्निकट भेजा। बीरवर बालाजी विश्वनाथ पन्त के भेजे हुये युक्तिपूर्ण पत्रने कान्हों जी आंग्रें के मन को परिवर्तित कर दिया और उन्होंने तत्क्षण कोल्हापुराधिपति का पक्ष त्यागकर महाराज शाहूजी का आश्रय ग्रहण किया।

राजनीति विशारद बालाजी के प्रयत्न से शाहूजी और आंग्रे के

मध्यस्थ सन्धि स्थापित हो गई। परिणामस्वरूप, पेशवा भैरवपन्त पिंगले कारावास से मुक्त हुए।

कान्होंजी आँग्रे ने बलपूर्वक महाराज शाहूजी के जिन जिन दुर्ग और गढ़ों पर अपना आधिपत्य कर लिया था उनमें से 'राजमाची' दुर्ग को छोड़ कर अन्यान्य दुर्ग व गढ़ उन्होंने शाहूजी को लौटा दिये। महाराज शाहूजी की ओर से कान्होंजी को दस दुर्ग और सोलह गढ़ी तथा महाराष्ट्र सेना के अधिष्ठाता का पद प्रदान किया गया। इतना ही नहीं वीर कान्होंजी आंग्रे ने शाहू जी से सरलेख की उपाधि भी प्राप्त की।

इस प्रकार बालाजी विश्वनाथ पन्तने पेशवा भैरव पन्त पिंगले को कारावाससे मुक्त कराया और दुर्जय शत्रु को परास्त कर उसे सन्धि बन्धनमें जकड़ अपना हितचिन्तक बना लिया। पश्चात् सन् १७१३ ई० में राजधानी सितारा लौट आये।

बालाजी के विपत्ति कालमें भी असीम साहस, शत्रु पराजयमें बुद्धि एवम् वाक्य चातुर्य इत्यादि अनेकानेक गुणों पर महाराज शाहूजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बालाजी का विशेष रूप से सम्मान करते हुए बहुमूल्य वस्तुएँ पारितोषिक स्वरूप प्रदान किया।

पेशवा भैरवपन्त पिंगले का वीरवर कान्होंजी आंग्रे द्वारा युद्ध में परास्त एवं बन्दी होनेके कारण तथा अन्यान्य कार्योंमें भी कार्य-दक्षता का अभाव देखकर, शाहूजी ने उनका पदाधिकार वापस ले लिया और १७१३ ई० के नवम्बर मास की १६ वीं तारीख की

महाराष्ट्र शिरोमणि बालाजी विश्वनाथ पन्त को पेशवा भरवपन्त पिंगले के पद पर नियुक्त कर 'पेशवा' उपाधि प्रदान की।

इस प्रकार महाराज शाहूजी से 'पेशवा' पद प्राप्त कर बालाजी प्रसन्न हो उठे। महाराज शाहू ने उनके प्रिय बन्धु बान्धवों को भी राजस्व विभाग में यथा स्थान नियुक्त किया। उन्होंने अम्बाजी पन्त पुरन्दरे को उनका उपमन्त्री निर्धारित किया और बालाजी के विशेष अनुरोध से हरि महादेव भानू को उन्हीं के आधीनस्थ 'फट-नवीश' का कार्य सौंप दिया।

इस प्रकार जो बालाजी कुछ वर्ष पूर्व सिद्धियों के भय से स्व-देश त्याग कर भागे-भागे फिरते थे पश्चात् सितारा में प्रवेश कर सौ मुद्रा वार्षिक वेतन पर कारकुन का काम करते थे, वही बालाजी अपनी असाधारण बुद्धि चातुर्य से राज्य के प्रधान मन्त्री ! पेशवा के पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे और इन्हीं की कृपा से इनके बन्धु-वर्गों ने भी योग्यतानुसार उच्च पद प्राप्त किया था।

जिस समय कान्होंजी आंग्रेने महाराज शाहू से मित्रता स्थापित कर गढ़ तथा दुर्ग प्राप्त किया था उस समय उसके निकटवर्ती श्रीवर्द्धन प्रभृति अनेक स्थान सिद्धियों के अधिकार में थे। आंग्रेने उन स्थानों को अपने अधिकार में करने के लिये बालाजी से सहायता की प्रार्थना की। बालाजी ने सच्चे मित्र की भाँति उनकी सहायता की और सन् १७१५ ई० के जनवरी मास में गर्वित सिद्धियों को परास्त कर कान्होजी आंग्रेने उन स्थानों को अपने आधीन कर लिया। इस कार्य के अन्त होते ही बालाजी को दामाजी खेरात

के दमन का भार उठाना पड़ा। शम्भाजी के पक्षका होने से उसने शाहूजी के राज्य में मनमाना अत्याचार करना आरम्भ किया। अतः बालाजी सेना लेकर उसे इस अत्याचार का दण्ड देने के लिये हिंगनगढ़ की ओर अग्रसर हुये।

पूना से ४० मील पूर्व दिशा की ओर 'हिंगन' ग्राम के सुदृढ़ छोटे से गढ़ पर दामाजी खेरात का अधिकार था। इस गढ़ के चारो ओर प्रायः ४० मील के अन्तर्गत प्रदेशों पर दामाजी खेरात का आधिपत्य था। बालाजी का सैन्य बल देखकर दामाजी ने कपट-युक्ति का आश्रय लिया। उन्होंने बालाजी से सन्धि करने की प्रार्थना की और शपथपूर्वक महाराज शाहू की आधीनता स्वीकार कर गढ़ समर्पण कर देने की प्रतिज्ञा की। बालाजी प्रसन्न हो अपने दोनों पुत्र बाजीराव और चिमणाजी तथा कुछ सैनिकों के लिये हुए गढ़ में प्रविष्ट हुए। उनके प्रविष्ट होते ही विश्वासघातक–नर पिशाच दामाजी ने अचानक उन्हें बन्दी कर लिया। बालाजी इस आकस्मिक घटना से अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने दामाजी को मुक्त कर देने के लिये कहा। नीच दामाजीने उन लोगों को छोड़ देने के उपलक्ष में एक लक्ष द्रव्य का प्रश्न उपस्थित किया। इतना ही नहीं वरन जब वे लोग क्षुधा से व्याकुल हुए तो पापी ने प्रत्येक के सम्मुख अँगारे के समान लाल बालू रखवा दिया।

इस समाचार को पाते ही महाराज शाहू को बड़ा खेद हुआ और उन्हाने अपने राज्याधारस्तम्भ प्रिय बालाजी विश्वनाथ पन्त

पेशवा को मुक्त करने के लिये मुँह माँगा द्रव्य दामाजी खेरात के पास भेजा ।

महाराज शाहू की कृपा द्वारा बालाजी मुक्ति लाभकर राजधानी सितारा में आ उपस्थित हुए । सर्वप्रथम उन्होंने सचिव नारायण शंकर को दामाजी के हाथ से मुक्त करने का विचार किया । यदि वे ऐसा न कर दामाजी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देते तो निश्चय ही वह नारायण शङ्कर का प्राण ले लेता । अतः इन सब बातों को विचारकर दामाजी के विरुद्ध युद्ध यात्रा का विचार छोड़कर पहले उसे द्रव्य भेजकर सचिव नारायण को मुक्त किया । जब सचिव नारायण सकुशल उनके पास पहुँच गये तब बालाजी ने सेना नायक मानसिंह मोरे, हैवत राव निलाम्बरकर के साथ विशाल सेना लेकर दामाजी खेरात के विरुद्ध प्रयाण किया ।

वीर सेनापतियों के साथ बालाजी ने दामाजी का वह दृढ़ गढ़ चतुर्दिग से घेर लिया । फिर क्या था—दोनों तरफ की तोपों और बन्दूकों की ध्वनि से आकाश मंडल गूंज उठा । बालाजी के तोपों के निरन्तर अग्निवर्षा से दामा का दृढ़ दुर्ग चूर-चूर हो गया । अब दामाजी खेरात छिन्न वीरों को एकत्रित कर बालाजी का सामना प्रत्यक्ष आकर करने लगा ।

बालाजी के वीरों द्वारा दामाजी खेरात के अनेकानेक वीर रण भूमि में सर्वदा के लिये निद्रादेवी की गोद में सुला दिये गये । अपने समस्त वीरों को बलि चढ़ा कर अन्त में दामाजी बन्दी हुआ और सन् १७१७ ई० के जून मास में राजधानी सितारा लाया गया ।

दामाजी को पराजित करने से महाराज शाहू के दर्बार में पेशवा बालाजी विश्वनाथ की धाक अधिक रूप से जम गई। धीरे धीरे उनके अधिकार में राजस्व विभाग का समस्त कार्य आ गया। बिना उनकी आज्ञा के कोई कार्य नहीं किया जाने लगा। इतना ही नहीं वरन महाराज शाहू भी बिना उनकी अनुमति लिये कोई कार्य नहीं करते थे। उन्हें बालाजी पर पूर्ण विश्वास था और वे अपना दाहिना हाथ समझते थे।

जिस समय वीर बालाजी अपनी असीम बुद्धि द्वारा महाराष्ट्र मण्डल के समस्त उपद्रवों को शान्त कर तथा अहंकारी देश द्रोहियों का दमन कर एकाग्रचित्त हुए थे उस समय आर्यावर्त्त की राजधानी दिल्ली में महान् उपद्रव संघटित हो रहा था। क्रूर औरंजेब के प्रपौत्र बादशाह फरुखशय्यर को सैयद अब्दुल्लाखाँ और हुसेन अलीखाँ के अधीनस्थ होकर राज्य संचालन कराना पड़ता था।

अतः बादशाह फरुखशय्यर तथा इनके आत्मीय इन दोनों सर्दारों के दुःख से अत्यन्त पीड़ित हो उठे थे और इन्हें नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे थे। दूसरी ओर महाराष्ट्र वीरा ने दक्षिण भारत के समस्त बादशाही देशों पर चौथ पद्धति स्थापनार्थ भयंकर उत्पात उठा रक्खा था। खाण्डेराव दभाड़े के बार बार आक्रमण करने से सैयद हुसेन अली का पराक्रम शिथिल हो गया।

इस प्रकार अनेक संकटों से आच्छादित हो सैयदोंने महाराज शाहू से मैत्री करली और दक्षिण देशों में शान्ति किस प्रकार हो इसका उपाय पूछा। बादशाह ने मराठों को चौथ अधिकार और

'सरदेश मुखी' का सनद देने से इनकार किया। सैयदों की आज्ञा न मानने के कारण सन् १७२७ ई० में बादशाह को उनसे युद्ध करना पड़ा। अपना पक्ष निर्बल देखकर सैयदों ने महाराज शाहू से समर सहायता की प्रार्थना की। उन्होंने महाराज शाहू के पास इस प्रकार का पत्र लिख कर भेजा।

"इस वर्त्तमान युद्ध में यदि महाराष्ट्र पति १५ हजार सेना द्वारा मेरी सहायता करें तो हम बादशाह द्वारा दक्षिण भारत के समस्त मुगल प्रदेशों पर चौथ प्रथा का अधिकार प्राप्त करा देंगे। इसके अतिरिक्त सेना के लिये १५ लाख रुपया देने के लिये तैयार हैं।"

दिल्लीश्वर के वज़ीर का भेजा हुआ पत्र पढ़कर पेशवा बालाजी ने महाराज शाहू की ओर से सेना सहायता के बदले में इन वस्तुओं की प्रर्थना की।

(१) महाराज शिवाजी द्वारा पराजित किये गये जो जो प्रदेश उनके आधीन थे उनपर सम्पूर्ण रूप से आधिपत्य का सनद प्राप्त होना चाहिये।

(१) बीजापुर, हैदराबाद, कर्नाटक, तंजौर, त्रिचिनापाली और मैसूर आदि ६ बादशाही देशों पर चौथ प्राप्ति का सनद प्राप्त होना चाहिये।

(३) महाराज शिवाजी का जन्म स्थान शिवनेरी और त्र्यम्बक दोनो दुर्ग महाराजा शाहू के आधीन होने चाहिये।

(४) महाराज शाहू के अत्मीय जन जो कि अभी तक दिल्ली हैं उन्हें मुक्त करना होगा।

(५) गोण्डावन और बरार देश का समस्त भू-भाग जिसपर कान्होंजी भोंसला का अधिकार है वह सब महाराष्ट्र विभाग में सम्मिलित कर लेने की आज्ञा मिलनी चाहिये।

(६) महाराज छत्रपति शिवाजी तथा उनके पूज्य पिता के भुजबल द्वारा कर्नाटक का जो समस्त भाग पराजित हुआ था वह सब महाराष्ट्रपति के अधिकार में होना चाहिए।

(७) शिवाजी द्वारा पराजित खानदेश जिसपर वर्त्तमान समय में बादशाह का अधिकार है उसके बदले में 'पंढरपुर' प्रभृति स्थान प्राप्त होना चाहिये।

यदि वजीरे-आलम बादशाह से इन प्रस्तावों को स्वीकार तथा सनद प्राप्त करा दें तो महाराष्ट्र-पति भी नीचे लिखे हुए नियमों का पालन प्रतिज्ञा-पूर्वक करेंगे।

(१) महाराज शाहु दिल्लीश्वर को १० लाख रुपया भेंट करेंगे।

(२) 'सरदेश मुखि' लाभ के एवज में महाराज बादशाह के देश की शान्ति रक्षा का भार ग्रहण करेंगे और जिन-जिन बादशाही प्रदेशों से चौथ वसूल किया जायगा वहाँ शान्ति स्थापन करेंगे। यदि चोर डाकू ठग आदि किसी प्रकार के उपद्रवियों द्वारा प्रजा पीड़ित होगी तथा प्रजा की क्षति होगी तो उस क्षति को पूर्णकर उपद्रवियों के दमन करने का भार लेंगे।

(३) चौथ वसूल करने के उपलक्ष में १५ हजार महाराष्ट्रीय सेना सदा सर्वदा उपस्थित रहेगी जो काम पड़ने पर बादशाह की

सहायता करेगो। जिस समय जिस स्थान पर सेना की आवश्यकता होगी उसी समय उसी स्थान पर १५ हजार सेना प्रस्तुत रहेगी।

(४) कोल्हापुराधिपति तथा उनके पक्ष के वीर योद्धा-कर्णाटक, बीजापुर, हैदराबाद इत्यादि स्थानों में किसी प्रकार का उत्पात करेंगे तो महाराज की ओर से उसका बन्दोबस्त किया जायगा।

(५) यदि कोल्हापुराधिपति के द्वारा बादशाही प्रजा की हानि होगी तो स्वयं महाराज शाहू उसकी पूर्ति कर देंगे।

यदि दिल्लीश्वर ऊपर लिखे प्रस्तावों को मानकर सनद देने के लिये तैयार हों तो महाराष्ट्रपति महाराजा शाहू अपने लिखे हुए नियमों का पालन करते रहेंगे और सेना द्वारा उनकी सहायता हो सकेगी अन्यथा नहीं।

इसप्रकार का पत्र पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने शाहू जी की आज्ञा से सैयद हुसेन अली के पास भेजा। सैयद हुसेन अली ने उपरोक्त प्रस्तावों को स्वीकार करते हुए बालाजी के पास उत्तर भेज दिया।

जब उसने प्रस्तावों को स्वीकार कर सनद देना स्वीकार कर लिया तब महाराष्ट्रपति, महाराजा शाहू की ओर से रण कुशल वीर सेनापति मानसिंह मोरे, परसोजी भोंसला, शम्भाजी भोंसला, विश्वास राव पराड़कर आदि के साथ १५ हजार कट्टर महाराष्ट्रीय सेना सैयदों की सहायतार्थ दिल्ली की ओर अग्रसर हुई।

इन सब सेना तथा सेना नायकों का भार पेशवा बालाजी विश्व-नाथ पन्त प्रधान पर था। अथवा यों कहा जाय कि वे कमाएडर-इन-चीफ़ नियुक्त हुए। अस्तु!

सन् १७१८ ई० के अन्त में इस महाराष्ट्रीय सेना ने राजधानी सितारा परित्याग कर रणभूमि के लिये दिल्ली की ओर यात्रा की। महाराष्ट्र तरुण वीर बाजोराव को भी अपने पूज्य पिता के साथ मुगल सम्राट की राजधानी दिल्लीके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

महाराज शाहू ने बालाजी को दिल्ली यात्रा के पूर्व ही यह उपदेश दिया था कि बादशाह से दौलताबाद, चन्दा दुर्ग, मालवा और गुजरात में "चौथ" पद्धति की आज्ञा प्राप्त करने की पूर्णरूप से चेष्टा करना।

वीर महाराष्ट्र सेना के दिल्ली में उपस्थित होते ही दिल्ली बिल्ली होकर उछलने लगी। बादशाही सेना महाराष्ट्रीय सेना से मोर्चा लेने के लिये रण-भूमि में आ डटी। थोड़ी देर में रण चण्डी का नृत्य आरम्भ हो गया। इस भयंकर युद्ध में कुछ सेना के साथ बादशाह 'फ़रुख़शय्यर' मारा गया और सैयदों को सहायता से महम्मदशाह ने बादशाही सिंहासन प्राप्त किया।

इसप्रकार नये बादशाह को दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ कराकर सैयदों ने पूर्व कथित प्रतिज्ञाओं का पालन किया। उन्होंने बादशाह महम्मद शाह से बालाजी को सत्वों की सनद प्राप्त करा दिया। इस समाचार को सुनते ही कि दिल्ली निवासी

परास्त हुए, समस्त मुग़ल सर्दार और उपद्रवी आग बबूला हो उठे और विशेपरूप से वे महाराष्ट्रों के शत्रु बन गये। समस्त उपद्रवियों ने मिलकर बालाजी को सुरलोक पहुँचाने का दृढ़ संकल्प किया और वे उस मार्ग का अनुसन्धान करने लगे।

एक दिन पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त सैयदों के साथ बाद्शाह के 'खास' दर्बार में जा रहे थे कि इतने में विश्वासघाती अधिवासियों ने अचानक महाराष्ट्रों पर आक्रमण किया। इस अचानक दुर्घटना से महादेव भानू तथा शम्भाजी भोंसले और लगभग १५०० महाराष्ट्र वीरों का बलिदान हुआ। परन्तु इसके साथ ही साथ चौगुने विद्रोहियों को भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा था।

इस अचानक विश्वासघात से महाराष्ट्र वीर क्रोधित हो उठे, उनकी आँखों सेअग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। यदि उस समय सैयदों ने क्षमा-प्रार्थी होकर द्रव्य-राशि द्वारा यथासाध्य महाराष्ट्रों की क्षति को पूर्ण न किया होता तो अवश्य उन्हें ही नहीं समस्त दिल्ली निवासियों को महाराष्ट्रीय प्रचण्ड अग्नि क्षण भर में स्वाहा कर जाती। अस्तु किसी भाँति महाराष्ट्रों के क्रोधको शान्तकर प्रधान मन्त्री सैयद हुसेन अली ने सन् १७१९ ई० की ३ मार्च को नये बादशाह महम्मदशाह की मोहर से अंकित सम्पूर्ण अधिकारों की एक सनद दिल्लीश्वर के हाथ से महाराष्ट्रों को प्राप्त करा दिया और साथ ही साथ महाराज शाहू के पुरवासी तथा समस्त आत्मीयगण कारावास की असह्य यंत्रणा से मुक्त कर दिये गए।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त प्रधान ने समस्त अधिकार और सनद प्राप्तकर स्वदेश की ओर यात्रा की। यात्रा के पूर्व इन्होंने राजनीतिशास्त्र-विशारद 'देवराव हिंगणे' नामक एक सर्वगुण—सम्पन्न ब्राह्मण को 'एलची' स्वरूप दिल्ली में छोड़ दिया।

इसप्रकार महाराष्ट्रपति के प्रधान, बालाजी ने दिल्लीश्वर से सन्धि स्थापन कर राजधानी सितारा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में पेशवा बालाजी विश्वनाथपन्त ने जोधपुर, जयपुर, उदयपुर आदि के राजाओं से भेंटकर सन्धि स्थापन कर लिया और उन्हें महाराष्ट्रपति का सच्चा मित्र बना लिया।

जिस समय पेशवा बाला जी विश्वनाथ पन्त प्रधान सैयदों की सहायतार्थ ससैन्य दिल्ली में प्रविष्ट हुए थे उस समय उन्होंने महाराष्ट्र वीरों का सेना–शिविर यमुना नदी के दक्षिण ओर की तटवर्ती भूमि पर नियोजित किया था। यह महाराष्ट्रीय सेना सन् १७१९ ई० के जनवरी और फरवरी (दो मास) तक दिल्ली में रही। सेना-शिविर के निकटवर्ती स्थल समूह को जिसमें कृषकों ने अकाट्य परिश्रम द्वारा अन्न बोया था, उस भूमि को सैनिकगण विनष्ट न कर सकें, इसकी पूर्णरूपसे व्यवस्था करने के लिए बालाजी ने कुछ कर्मचारियों को कड़ी आज्ञा दे रखी थी और साथ ही साथ उन्होंने सैनिक दल में भी इस बात की घोषणा करवा दी थी। परन्तु अहंकारी सर्दार मल्हारराव होलकर ने बालाजी की आज्ञा का पालन नहीं किया। उस सर्दार ने एक दिन इस आज्ञा की

अवज्ञा कर अपने अधीनस्थ अश्वादिकों के लिये बलपूर्वक किसी कृषक के क्षेत्र से अन्न कटवाकर उसका क्षेत्र बिलकुल नष्ट कर दिया। इतना ही नहीं वरन् अपनी प्रभुता दर्शाने के लिए बेचारे गरीब कृषकों को दण्ड भी दिया।

इस दुर्घटना से दुःखी होकर कृषकों ने बाजीराव के निकट यह अभियोग उपस्थित किया।

अपने पिता के आज्ञा की अवज्ञा सुन तथा गरीब कृषकों के आँसू देखकर बाजीराव क्रोधित हो उठे और असली अपराधी का अनुसन्धान करने लगे। वे प्रत्येक अश्वशालाओं को अन्वेषण करते हुए मल्हारराव के अश्वदल के समीप पहुँचे। अश्वों के सामने अन्न राशि देखकर, अश्व रक्षक अनुचरों को ही अपराधी समझ उन्हें दण्ड देना आरम्भ कर दिया।

इस काण्ड को मल्हारराव कुछ दूर खड़े देख रहे थे। उन्हें बाजीराव पर बड़ा क्रोध आया और उस क्रोध से उन्मत्त हो उन्होंने बाजीराव को लक्षित कर एक ढेला मारा तथा क्रूर बचन भी कहे। बाजीराव ने उसके उपलक्ष में न मुख से ही कुछ बचन कहा और न अन्य उपाय का अवलम्बन किया। यदि उस समय तरुण वीर बाजीराव अन्य साधारण युवकों की भाँति धैर्य्य खो देते तो तत्काल उन्हें मल्हारराव से द्वन्दयुद्ध करना पड़ता। परन्तु वह अपने क्रोध को दबा समुद्र की भाँति गम्भीरता धारण कर चुपचाप अपने शिविर में लौट आये और पिता से उपरोक्त घटना का समाचार कह सुनाया।

अपने पुत्र बाजीराव पर मल्हार राव द्वारा किये गये उद्दण्डता को सुनकर पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने कर्तव्य-विस्मृत मल्हा-रराव का सर्वस्व अपहरण कर लेने का दण्ड देना चाहा, किन्तु अन्तमें कई एक सैनिकों के विनययुक्त आग्रह एवं होलकर के बाजी-राव से क्षमा प्रार्थी होने पर पेशवा बालाजी ने मल्हार राव का अप-राध क्षमा कर दिया।

मल्हार राव होलकर ने बाजीराव से क्षमा तो माँग ली परन्तु उस दिन से उनका क्रोध तरुण बाजीराव पर बढ़ता ही गया। वह प्रतिकार के लिये उद्विग्न हो उठे और उचित मार्ग का अनुसन्धान करने लगे।

एक दिन अस्त्रशास्त्र-विहीन बाजीराव कहीं जा रहे थे कि अचानक मल्हार राव होलकर से उनकी भेंट हो गई। मल्हार राव तो ऐसे ही अवसर का अनुसंधान करही रहे थे, अतः बाजीराव को निःशस्त्र देखकर उनकी आसुरी लालसा ने तत्काल उग्ररूप धारण कर लिया। क्रोध से उन्मत्त होकर मल्हार रावने तरुण बाजीराव पर सहसा आक्रमण किया और अपने हाथ के चमचमाते हुए भाले का अग्रभाग उनकी छातीपर रख क्रोध से दाँत पीसते हुये बोले—"यदि इस समय भीषण भाले द्वारा तुम्हारा हृदय बेधकर तुम्हें यमपुर पहुँचा दूँ तो तुम्हारी रक्षा करनेवाला कौन है! बोलो, तुम्हारे ही कारण मुझे अपमान सहना पड़ा था।"

इस आकस्मिक घटना से तरुण वीर बाजीराव किंचित मात्र भी विचलित न हुये और मुस्कुराते हुये बोले—"यदि इस समय मेरे

हाथ में आप की भांति भाला होता तो मैं इस प्रश्न का यथोचित उत्तर सहज ही में दे देता। परन्तु नहीं, पूर्व कई युद्धों में आप का साहस और रण-कौशल देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आप वीर पुरुष हैं, इस समय मुझपर प्रसन्न होकर अपनी क्रोधाग्नि शान्तकर मुझे अपना मित्र स्वीकार कीजिये।

बाजीराव की मञ्जुमधुर वाणी से मुग्ध होकर मल्हारराव होलकर का क्रोध शान्त होगया। उन्होंने बाजीराव के वक्षस्थल से भाला हटा लिया और सच्चे वीर की भांति उन्हें गले से लगाकर मित्रता के अटूट सूत्र में आबद्ध कर लिया।

उस समय से इन दोनों वीरों का अकृत्रिम प्रणय सदा बना रहा और जीवन के शेष समय तक चिरस्थायी रहा।

शत्रुओं को परास्त कर दिल्लीश्वर से स्वतन्त्रता की सनद लेकर सन् १७१९ ई० की ४ जुलाई को पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त, राजधानी सितारा में जा उपस्थित हुए। अपने विजयी पेशवा का आगमन सुनकर महाराज शाहू ने राजदर्बार के सूर सामन्तों को साथ ले कुछ दूर आगे जाकर उनका स्वागत किया और मान सम्मान के साथ उन्हें दर्बार में ले आये।

पेशवा बालाजी के अकाट्य परिश्रम तथा बुद्धि चातुर्य द्वारा इस सनद को प्राप्त करने से समस्त महाराष्ट्रों के प्रसन्नता की परिसीमा न रही। पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने से महाराष्ट्र राज्य में कहीं किसी स्थान पर यवन अधिकारी नहीं रह गया। महाराज शाहू का प्रताप समस्त महाराष्ट्र पर पूर्णतः विस्तीर्ण हो गया।

महाराज शाहू अपने पेशवा द्वारा समस्त दुःख विपत्तियों का नाश एवं दिल्लीश्वर से स्वतन्त्रता की सनद प्राप्त करने के उपलक्ष्य में बालाजी को विशेष सादर पुरस्कृत करना चाहा। अतः उन्होंने एक दिन राज्य के बड़े-बड़े सूर, सामन्त, सर्दारों को निमन्त्रित कर एक विशाल दर्बार की आयोजना की और मान सम्मान के साथ पेशवा बाला जी को पुरस्कार रूप में पूना देश के अन्तर्गत पाँच देशों की सरदेशमुखी स्वत्व और कई एक ग्रामों का सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किया। खानदेश और बालाघाट तो पहले ही से बालाजी के अधिकार में आ चुका था।

इसप्रकार पेशवा बालाजी पन्त महाराज शाहू की ओर से विशेष पुरस्कृत तथा प्रधान के पद पर नियुक्त हुए। अब उन्होंने राज्य के अन्य शत्रुओं के पराक्रम को नष्ट करने का निश्चय किया। परन्तु इस कार्य के पूर्व उन्हें राज्य के आय व्यय की ओर ध्यान देने की नितान्त आवश्यकता थी, क्योंकि आय के सम्बन्ध में सर्दारगणों के प्राप्य अंश का कोई निर्धारित नियम नहीं था। इस कारण राजकोष में प्रायः धन का अभाव ही रहता था। पेशवा बालाजी ने राजकोष की वृद्धि करने के लिये जमा बन्दी का सूक्ष्म हिसाब देखकर आय-व्यय के सम्बन्ध में कई एक विशेष नियम निर्धारित किये। इस नवीन नियम के निर्धारण के फल स्वरूप राज्य की अनेक कठिनाइयाँ दूर हो गई और राजकोष की वृद्धि हुई।

प्रजावर्ग के दुःख सुख में सहायक होना एवं अपराधी को

उचित दण्ड देना इत्यादि अनेकानेक सुखकर नियमों को निर्धारित करने से समस्त राजपुरुषों को राज्य की श्रीवृद्धि करने का स्वाभाविक अनुराग उत्पन्न हुआ। इतना ही नहीं वरन यवनों के हाथ से नित्य नूतन प्रदेश छीनने की प्रबल आकांक्षा महाराष्ट्र वीरों के हृदय में जागृत हो उठी और वे अन्य प्रदेशों को जीतकर महाराज शाहू के राज्य में मिला लेने को चेष्टा में संलग्न हुए।

राज्य के बड़े-बड़े सूर सामन्त व सर्दारों का यथोचित आदर प्रतिष्ठा तथा घनिष्ट भाव से सम्बन्ध संयोजित कर, पेशवा बालाजी ने समस्त महाराष्ट्र मण्डल में एकता स्थापित कर दी। यही कारण है कि महाराष्ट्रों का आधिपत्य थोड़े समय में ही समस्त भारतवर्ष में विस्तृत हो गया था। विजयी पेशवा बालीजी ने समस्त यवन दस्यु—समूह को पराजित कर प्रजा को उनसे निर्भय कर दिया। विशेषत: कृषक बेचारों के आनन्द का तो ठिकाना ही न रहा। कारण कि कृषक ही विशेषरूप से मुसलमानी विप्लव द्वारा विदग्ध और जर्जरित किये जाते थे। अस्तु!

पाठकों को विदित है कि बालाजी तथा सचिव नारायण शंकर दामाजी के विश्वासघात के कारण बन्दी हुए थे। महाराज शाहू द्वारा बालाजी तो कारावास से मुक्त हो गये किन्तु नारायण शङ्कर को कुछ दिवस तक शत्रु दुर्ग में बन्दी रहना पड़ा था और उन्हें अपने मुक्त होने की कोई आशा भी न थी। उस समय वीर बालाजी ने दामाजी को मुँह माँगा द्रव्य भेजकर सच्चे मित्र की भाँति नारायण शङ्कर को शत्रु के कराल मुख से मुक्त किया। यह

समाचार सुनकर सचिव नारायण शङ्कर की माता ने पुत्र की प्राण रक्षा के लिये बालाजी को 'पुरन्दरगढ़' और 'पूना' देश पारितोषिक स्वरूप प्रदान किया था। बालाजी ने महाराज शाहू से अनुमति लेकर उसको ग्रहण किया।

इस समय पूना देश 'बाजी कदम' नामक एक मुगल व्यक्ति के अधिकार में था। पूना के आय के आमदनी पर जो चौथ निर्धारित था केवल उसीको सचिव नारायण शङ्कर प्राप्त करने के अधिकारी थे। उन्होंने माता की आज्ञा से चौथ अधिकार बालाजी को प्रदान कर दिया। थोड़ा बहुत पूना पर अधिकार प्राप्त हो जाने पर बालाजी ने बुद्धि चातुर्य द्वारा मुगल सर्दार को वशीभूत कर सन् १७१८ ई० के अक्तूबर मास में सम्पूर्ण पूना प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।

इतने काल तक बालाजी का परिवार 'सासवाड़' ग्राम में वास कर रहा था। अब उन्होंने पूना के पुरन्दर दुर्ग में अपना निवास स्थान बनाने की इच्छा महाराज शाहू के सम्मुख प्रकट किया। अपने प्रिय पेशवा की इच्छा पूर्ति के लिये महाराज शाहू भला कब आज्ञा प्रदान न करते, उन्होंने तत्काल समस्त पूना देश बालाजी को पुरस्कार स्वरूप दान कर दिया। विजयी पेशवा बालाजी विश्वनाथपन्त प्रधान के पूना में पैर रखते ही समस्त चोर ठगादि अत्याचारी अल्पकाल में ही वहाँ से भाग गये, जिससे प्रजा शान्तिपूर्वक अपना-अपना व्यवसाय करने में प्रवृत्त हुई।

इसप्रकार पेशवा बालाजी पूना देश को अपने आधीन कर पुरन्दर दुर्ग में सपरिवार रहने लगे। इधर कतिपय दिनों से महाराष्ट्र साम्राज्य की सुव्यवस्था, स्वजातियों की श्रीवृद्धि तथा राजकीय कार्यों में अधिक परीश्रम करने से बालाजी अस्वस्थ हो गये थे। शोचनीय अवस्था में भी उनको प्रधान सेनापति का कार्य समर-भूमि में करना पड़ा था। इस कारण उनका शरीर और भी क्षीण हो गया था। अतः उन्होंने जलवायु परिवर्त्तन करने के लिये और कुछ दिवस एकान्त में रहकर विश्राम करने को इच्छा महाराजा शाहूसे प्रकट की। महाराज शाहूने बालाजीको 'सासवाड़' ग्राम में जाकर निवास करने की अनुमति दी और साथ ही बहुमूल्य औषधियों द्वारा उपचार करने के लिये प्रसिद्ध वैद्यों को नियुक्त कर दिया।

बाला जी सपरिवार 'सासवाड़' ग्राम में आकर रहने लगे। वैद्यों ने उनको औषधि देने में कोई कसर उठा न रखा, परन्तु दैव के प्रतिकूल होने से औषधि कुछ लाभ न कर सकी। दिन प्रति दिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया और उस रोग ने भयंकर रूप धारण कर लिया। सन् १७२०ई० की २ अप्रैल को समस्त महाराष्ट्र राज्य के चमकते हुये सितारे पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त का देहावसान हो गया। अपने कुटुम्बियों को ही नहीं वरन् समस्त महाराष्ट्रों को रुलाते हुये बालाजी ने मर्त्यलोक को त्याग स्वर्गधाम को प्रयाण किया। राज्य में हाहाकार मच गया। अपने प्रधान की परलोक यात्रा का दुखद सम्वाद सुनकर समस्त महा-

राष्ट्रों के चक्षुओं से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। जब महाराज शाहू ने अपने परम प्रिय पेशवा का परलोक गमन सुना तो वे स्तब्ध हो गये। कुछ देर के लिये उनकी आँखें बन्द हो गईं और वे शोक सागर में गोते लगाने लगे।



४

बालाजी विश्वनाथ असाधारण बुद्धि–प्रतिभाशाली एवम् विलक्षण राजनीतिज्ञ थे। युद्ध कौशल में पर्याप्तरूप से पारंगत होने पर भी वह असाधारण योद्धा थे। उनमें साहस कूट कूटकर भरा था। वह अत्यन्त सरल प्रकृति के शान्त वीर थे।

पेशवा बालाजी का चरित्र

मुगल राजपरिवार में बाल्यावस्था से ही रहने के कारण महाराज शाहू विलासिता के मायाजाल में फँस गये थे। परन्तु उनके परम

प्रिय पेशवा विलासिता देवी की आराधना से कहीं दूर थे। यदि महाराज शाहू को बालाजी ऐसे कार्यदक्ष प्रतिभाशाली राजनीति-विशारद पुरुष की सहायता न मिलती तो निस्सन्देह वह महाराष्ट्र के राज्यों में ऐक्यता स्थापित कर सुख शान्ति पूर्वक राज्य शासन न कर पाते।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त दिल्लीश्वर से समस्त महाराष्ट्र राज्य को स्वतन्त्र कर तथा राज्य के समस्त उपद्रवों का दमन करते हुए महाराष्ट्रों को एकता के बन्धन में बाँध उनमें एक नूतन शक्ति का संचार किया था। महाराज शाहू तो नाममात्र के राजा थे। राज्य का समस्त कार्य बिना बालाजी की अनुमति के नहीं हो पाता था। इतना ही नहीं वरन महाराज शाहू भी बिना उनकी सलाह लिये राज्य विषयक कोई नियम निर्धारित नहीं करते थे।

माता पिता की मृत्यु होने स कनिष्ट भ्राता और भगिनि एक बारगी शोकातुर हो उठीं परन्तु पितृतुल्य साहसी बाजीराव ने नाना युक्तियों द्वारा उनके दु:ख का नाश कर उन्हें धैर्य धारण करने का उपदेश दिया।

५

बाजीराव को पेशवा पद प्राप्ति

जिस समय पेशवा बालाजी विश्वनाथ स्वर्गवासी हुए थे उस समय बाजीराव की अवस्था २१ वर्ष की थी। उनके पिता बालाजी ने नौ वर्ष की अवस्था से ही उन्हें प्रत्येक युद्ध में अपने साथ ले जाकर जिस प्रकार युद्ध विद्या में पूर्ण पारंगत बना दिया था, उसी प्रकार 'राजकाज' का निरीक्षण करने में भी परिडत बना दिया था। पिता के समान ही उनमें

वाक्-पटुता असाधारण बुद्धि, विचक्षण सहन शक्ति अकाट्य परिश्रम तथा मधुर भाषण आदि अनेकों गुण उनमें विद्यमान थे।

बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के पश्चात् महाराज शाहू ने बाजीराव को सर्व प्रकार से योग्य समझकर उक्त पद पर प्रतिष्ठित करने का संकल्प किया। प्रतिनिधि श्रीपतराव ने तो महाराजशाहू को इस विषय में अन्य प्रकार का परामर्श दिया था। किन्तु उन्होंने पिता के ही तुल्य तरुण वीर बाजीराव को महामेधावी कूट राजनितिज्ञ तथा राज कार्य में प्रवीण देखकर प्रतिनिधि के कुटिलतापूर्ण परामर्श को अस्वीकार कर दिया और अपने संकल्प पर दृढ़ रहे।

पेशवा बालाजी की मृत्यु के पूर्व ही बाजीराव ने पिता की आज्ञा से महाराष्ट्रीय सेना लेकर 'आलम अली' (सैयदों के प्रतिनिधि) के सहायतार्थ खानदेश में गमन किया था। 'आलम अली' ने वीर बाजीराव की सहायता द्वारा देश द्रोहियों को यथोचित दंड देकर विप्लव को शान्त किया तथा बाजीराव को पुरस्कार स्वरूप कई एक अमूल्य वस्तुएँ भेंट की थीं।

जब बाजीराव उन सब वस्तुओं के साथ पिता के सन्निकट (सासवाड़ में) आये तो पिता को मृत्यु-शय्या पर देख उनका हृदय विह्वल हो उठा परन्तु उपचार ही क्या था। उनके आने के दो दिन पश्चात् पिता की मृत्यु हो गई। उन्होंने "उसी स्थान (सासवाड़ में) पर पिता का श्राद्ध आदि कर्म किया। अभी वे श्राद्ध कर्म से मुक्त भी नहीं हुए थे कि इतने में महाराज शाहू ने बाजी-

राव को पितृपद का भार ग्रहण करने के लिये राजधानी सितारा में बुला भेजा।

महाराष्ट्रपति का आज्ञापत्र पाकर बाजीराव उनके सन्निकट जा उपस्थित हुए। उस समय रामचन्द्र पन्त, अम्बाजी पन्त पुरन्द्रे, भानु जी तथा कनिष्ट भ्राता चिमणाजी आप्पा आदि वीर पुरुष उनके साथ थे।

महाराज शाहू ने बाजीराव को पेशवा पद पर विभूषित करने के लिये एक खास दिन निर्धारित किया था इसलिये इस महोत्सव के उपलक्ष्य में उन्होंने एक विराट दरबार की आयोजना कर राज्य के समस्त सरदार तथा सामन्त गणों को निमन्त्रित किया। राजा शाहू बाजीराव को साथ लेकर राज दर्बार में उपस्थित हो सिंहासन पर विराजमान हुये। महाराज के सिंहासन पर विराजते ही समस्त दरबारियों ने महाराष्ट्रपति की जय ध्वनि की। तत्पश्चात् महाराज शाहू ने बाजीराव को "पेशवा" पद के साथ २ बहुमूल्य वस्त्र तथा हीरा मोती आदि प्रदान किया और स्वयम् अपने हाथों से सुवर्ण मूठ की तलवार तरुणवीर बाजीराव को अर्पण किया।

इसप्रकार महाराज शाहू ने मान सम्मान के साथ 'पेशवा' उपाधि प्रदान कर बाजीराव को पितृपद पर प्रतिष्ठित किया और राज्य का समग्र कार्यभार उनको सौंप दिया। बाजीराव के कनिष्ट भ्राता चिमणा जी आप्पा भी महाराज के सन्निकट रहकर सहायता देने लगे।

इस समय बाजीराव पर कई एक कार्यका उत्तरदायित्व था।

एक तरफ उन्हें राजकाज देखना पड़ता था और दूसरी ओर राज्य के निकटस्थ प्रदेशों के विद्रोहियों को दमन कर शान्ति स्थापन करना पड़ता था। उनका अधिकांश समय इसीमें व्यतीत हो जाता था और राज्य का कई एक कार्य उनके विना रुक जाने लगा। यह देखकर महाराज शाहू ने उनके कनिष्ठ भ्राता चिमणा जी अप्पाको 'नायक पेशवा' (बाजीराव के असिस्टेण्ट) की उपाधि प्रदान की।

महाराज शाहू के राजत्वकाल में 'पेशवा' शब्द प्रसिद्ध होने पर भी 'प्रधान' का व्यवहार होता था। क्योंकि बाजीराव को राज्य को ओर से 'पेशवा' और 'प्रधान' दोनों उपाधियाँ लिखी जाती थीं।

बाजीराव की आसाधारण बुद्धि वैभव ने अधिकाँश में महाराष्ट्र सरदारों का आत्म विग्रह शान्त कर दिया था। किन्तु कतिपय सरदारों ने कोल्हापुराधिपति महाराज शम्भाजी का पक्ष अवलम्बन किया था। फिर भी स्वर्गवासी पेशवा बालाजी विश्वनाथ के अकाट्य परिश्रम और चेष्टा से महाराज शाहू का पक्ष प्रबल था। प्रजा, चोर, दस्यु ठगादि के भय से वंचित थी। समस्त राज्य में शान्ति देवी का निवास था। दिल्ली के राष्ट्र-परिवर्तन के समय में महाराष्ट्रीय सेना ने जो सहायता की थी उसके कारण महाराज शाहू को प्रतिष्ठा उत्तर भारत में और भी विशेषरूप से हो गई थी।





निज़ामुलमुल्क

पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ हम लिख देना चाहते हैं कि इस क्रान्तियुग में पुर्तगीज़ भारत में पधार चुके थे और तत्कालीन स्थिति देखकर थोड़े दिनों में ही वणिज्य बृत्ति को त्यागकर राजकोय ब्यापार में प्रवेश करने के लिये अकाट्य परिश्रम करने लग गये थे। साम, दाम, दण्ड, इन तीन युक्तियों द्वारा मनोभिलाषा फलीभूत नहीं हो सकती इसे चतुर पुर्त-गीज़ भली भाँति जानते थे। अतः उन्होंने भेद युक्ति का आश्रय

लिया और वह क्रमशः इस देश के राजन्य चक्र में छिद्र अन्वेषण कर उन लोगों के साथ अपनी शक्ति की परीक्षा करने लगे। थोड़े ही समय में पुर्तगीज़ों की भेद युक्ति ने तीर के समान काम करना आरम्भ किया और इन लोगों ने पश्चिमीय समुद्र के निकटवर्ती अनेक बन्दरगाहों को अपने अधिकार में कर लिया।

उस समय वीर बाजीराव 'पेशवा' पद पर नियुक्त हो चुके थे। उन्होंने राज कार्य में प्रवृत्त होकर देखा कि इस समय 'गोवा' अधिकारी पुर्तगीज़ लोग भी महाराष्ट्र मण्डल के बलिष्ट शत्रु हो चुके हैं।

पुर्तगीजों का विपुल वैभव सुनकर डच और अङ्गरेज भी व्यापार करने की नियत से दक्षिण-पश्चिम समुद्र तट पर विराजमान होचुके थे। परन्तु पुर्तगीज़ों की भांति राज्य स्थापित करने की ओर इनलोगों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था।

एक ओर विदेशी भारत-भूमि पर अपना सिक्का जमाना चाहते और दूसरी ओर देश के मुग़ल बादशाहों की अवस्था दिनो दिन शोचनीय होती जाती थी। इसलिये उन्हें राज्य में प्रवृष्ट होने का सुगम मार्ग मिल गया। अस्तु!

दिल्लीपति महम्मदशाह, स्वर्गवासी मुग़ल सम्राटों से दुर्व्यसन तथा विलासप्रियता में कुछ कम न थे। आठो पहर सुधारूपी सुरा को शिरोधार्य कर सृष्टि की सर्वोत्तम कारीगरी का नमूना, सुन्दर वाराङ्गनाओं के रूपलावण्य में भूले हुए थे। अपने राजा की इस दुरावस्था को देखकर कर्मचारीगण भी अकर्मण्यता की सीमा लाँघ चुके थे। सभी अपने अपने को शाहंशाह महम्मद शाह समझने

लगे थे। प्रजा पर अत्याचार के बादल मड़राने लगे। आय व्यय की अव्यवस्था होने के कारण बादशाह को दैनिक निर्वाह के लिए भी द्रव्य मिलना दुश्वार होगया। इस कारण विवश होकर बादशाह महम्मद शाह ऋण के बन्धन में जकड़ने लगे। अस्तु! अपने को ऋण बन्धन से मुक्त करने के लिए शाहंशाह ने नित्य नवीन कानून निकालना आरम्भ किया। प्रजा नित्य नूतन कर से पीड़ित हो उठी। घोर अत्याचार से पीड़ित दरिद्र गृहस्थों का मर्मभेदी आर्तनाद श्रवण कर, दुःखी प्रजा की सहायता करने या उनके साथ समवेदना प्रकट करने वाला कोई वीर पुरुष उत्तर भारत में नहीं था।

इस समय सुदक्ष राजनीति विशारद एक व्यक्ति ने अपने भुजबल तथा युद्ध कौशल द्वारा यवनों के श्री हीन गौरव को पुनः दक्षिण भारत में प्रतिष्ठित किया। इसका नाम था सर्दार—'मीर कमरुद्दीन। वजीर सैयदों ने इस वीर को १७१७ ई० में मालवा प्रदेश का सूबेदार नियुक्त कर दक्षिण भारत की ओर भेजा था। इस वीर पुरुष ने तत्कालीन महाराष्ट्र शक्ति की गति को रोकने के लिये यथाशक्ति परिश्रम किया और वह अधिकाँश में सफल भी हुआ। यदि इस वीर का आविर्भाव उस समय न होता तो अवश्य महाराष्ट्रीय वीर गण समस्त भारत में हिन्दू साम्राज्य की नींव सुदृढ़ कर देते।

दिल्लीश्वर से विद्रोही बनकर निज़ामुल्मुल्क ने मालवा से लेकर नर्मदा नदी के तट पर्यन्त समग्र भू-भाग पर आक्रमण कर अपने आधीन कर लिया। इतना ही नहीं वरन उसने अपने विक्रम

द्वारा प्रसिद्ध 'आशीरगढ़' के दुर्ग पर भी आधिपत्य जमा लिया था। निज़ामुलमुल्क का सितारा चमकता हुआ देख अथवा भयभीत होकर अधिकांश बादशाह के हितचिन्तक मुगल-सरदार विद्रोही बनकर इस वीर के पक्ष में सम्मिलित हो गये। अब निज़ामुलमुल्क की शक्ति पहले से भी अधिक हो गई।

इस भीषण विश्वासघातक विद्रोह का समाचार जब दिल्ली राज्य के सच्चे अधिकारी सैयदों ने सुना तो वे क्रोधित हो उठे और उन्होंने इस विद्रोही को उचित दण्ड देने के लिये, कुछ सेना के साथ सेनापति दिलावर खाँ को निजाम के विरुद्ध युद्ध करने को भेजा। उधर औरङ्गाबाद से सैयद हुसेन अली के भतीजे सैयद आलम अली ने भी निज़ाम का मद मर्दन करने के लिए युद्ध यात्रा की।

दोनो सेनापति अपनी अपनी सेना लेकर समर भूमि में यथा-समय पहुँच गये और उन्होंने अपनी शक्ति भर निज़ाम को परास्त करने का भी प्रयत्न किया। परन्तु भाग्य विपरीत होने के कारण निजामुलमुल्क द्वारा आलम अली और दिलवर खाँ को समर भूमि में ही प्राणाहुति देनी पड़ी।

इस दुखद सम्बाद को सुन सैयद हुसेन अली ने स्वयम् शाहं-शाह के साथ एक विशाल सेना सहित सन् १७२० ई० के अक्टूबर मास में निज़ामुलमुल्क के विरुद्ध प्रयाण किया। किन्तु मार्ग में ही बादशाह की गुप्त आज्ञानुसार किसी विश्वासघातक ने पीछे से सैयद हुसेन अली का मस्तक धड़ से अलग कर दिया और द्वितीय भ्राता

सैयद अब्दुल अली को भी शाही सुख छोड़कर कारागार की नारकीय यन्त्रणायें भोगनी पड़ीं।

इस प्रकार निज़ामुल्मुल्क का कंटकाकीर्ण मार्ग बिना परिश्रम किये एक वारगी साफ हो गया और वह उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ होने के लिये किसी सुअवसर का अनुसन्धान करने लगा।

विश्वविख्यात दिल्ली के शाहंशाह महम्मदशाहने राजनीति-विशारद निजाम के असाधारण बल बुद्धि को देखकर प्रधान मन्त्री पद प्रदान करने के लिये निजामुलमुल्क को निमन्त्रित किया परन्तु वह सन् १७२२ तक दिल्ली न जा सके।

पेशवा का पद प्राप्त कर बाजीराव ने पितृप्रिय पूना प्रदेश को उन्नत वनाने के लिये बुद्धि चातुर्य का आश्रय ग्रहण किया। उस समय पुरन्दर दुर्ग के किलेदार बापूदेव श्रीपति नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण नियुक्त थे।

बाजीराव ने बापूदेव श्रीपति को पूना के सूबेदार पद पर प्रतिष्ठित किया और रम्भा जी यादव नामक एक चतुर व्यक्ति को बापू जी के अधीनस्थ (सहायक सूबेदार) रखकर पूना ग्राम को 'नगर' रूप में परिणत करने का भार अर्पण किया।

रम्भाजी यादव के घोर प्रयतन से कुछ वर्षों के अभ्यन्तर ही पूना ग्राम नगर रूप में परिणत हो गया। बड़ी २ सड़कें तथा विशाल अट्टालिकाएँ नगर की शोभा द्विगुणित करने लगीं। व्यवसायी और परिश्रमी शिल्पकारों ने पूना नगर को और भी प्रख्यात

कर दिया था। देश देशान्तर के व्यापारी पूना में पधारने लगे थे। इसलिये वाणिज्य का यह एक केन्द्र बन गया।

इस प्रकार पूना ग्राम, पूना नगर में पूर्णरूप से परिणत हो जाने पर बाजीराव की आज्ञा से एक विशाल गढ़ १७२९ से बनना आरम्भ हुआ। यह विशाल गढ़ १० मील के घेरे में निर्माण किया गया था। उस समय की रीत्यानुसार यह गढ़ सुदृढ़ प्राचीरों द्वारा परिवेष्ठित किया गया जिसमें नौ बुर्ज और पाँच दीर्घकाय दर्वाजे थे। इस गढ़ के निर्म्माण का कार्य १७३७ ई० में पूर्णरूप से समाप्त हुआ था।

उत्तर की ओर इस गढ़ का 'सिंहद्वार बनाया जा रहा है यह संवाद सुनकर महाराज शाहू अप्रसन्न हो गये और उन्होंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक बाजीराव को लिख भेजा कि—'दिल्ली की ओर सिंहद्वार होने से योद्धा लोग युद्ध वेशमें उसी प्रधान दर्वाजे से निकलेंगे जिससे दिल्ली की अवज्ञा होगी क्योंकि दिल्लीश्वर हमारे अधीश्वर हैं।'

पाठक यहाँ इतना लिख देना अत्यावश्यक है कि ※ महाराज

※ महाराष्ट्र वीर शिरोमणि महाराज शिवाजी के पुत्र शम्भा जी को बध करने के उपरान्त भी नरपिशाच औरंगजेब का कठोर हृदय शान्त नहीं हुआ। उस निर्दयी ने महाराष्ट्रपति के अन्तिम वंश-चिन्ह को भी इस लोक से उठा देने का पूर्ण प्रण कर लिया था परन्तु उसकी यह अन्तरिक इच्छा उसकी पुत्री के कारण पूर्ण न हुई। कुमारी 'जेबुन्निसा' के एकान्त अनुरोध से महाराज शाहू अपने प्राण बचा सके थे। शाहजादी जेबु-

शाहू की बाल्य तथा तरुणावस्था औरंगजेब के शाही महल में ही व्यतीत हुई थी इसलिये उनके हृदय में दिल्ली के प्रति शाहू की विशेष श्रद्धा थी। एतदर्थ उत्कट इच्छा रहने पर भी महाराज शाहू के जीवन पर्यन्त बाजीराव की यह इच्छा पूर्ण न हुई—और उत्तर की ओर सिंहद्वार रखने का कार्य अपूर्ण ही रहा। बाजीराव के पुत्र वीरबालाजी बाजीराव ने महाराष्ट्र पति के स्वर्गवासी होने पर सिंह द्वार का अपूर्ण कार्य सम्पूर्ण कर पितृदेव की इच्छा-पूर्ति की।

बाजीराव के समय में यह प्रकाण्ड प्रासाद नाना भाँति के अनुपम वस्तुओं से सुसज्जित था। तथा नगर के जिस स्थान में यह यह गढ़ बनाया गया था, उसे अब 'शनिवार' पेठ कहते हैं। इसी के अनुसार यह प्रसाद 'शनिवार वाड़ा' अब भारत सरकार के आधीन है। इसका अधिकांश अंश नष्ट कर वहाँ पर कचहरी बना दी गई है।

हम अपने पाठकों के विनोदार्थ 'पूना वर्णन' का कुछ अंश

न्निसा' फारसी की अद्वितीय पण्डिता थी। बड़े बड़े मौलाना मौलबियों को उसकी बुद्धि के सामने अपना मस्तक नीचा कर लेना पड़ता था। सम्राट औरंगजेब अपनी इस पुत्री को प्राण से भी बढ़ कर चाहता था। उसने पुत्री की कोई भी प्रार्थना अस्वीकार नहीं की थी। परन्तु शाहू जी से विवाह करने की उसकी प्रतिज्ञा सम्राट द्वारा अपूर्ण होने से परम विदुषी कुमारी 'जेबुन्निसा' को आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर कुंवारी रहना पड़ा था

उद्धृत किये देते हैं। मि० गार्डन सर्व प्रथम पूना में सन् १७३९ इ० में पधारे थे। उन्होंने लिखा है:—

"भारतवर्ष में पूना एक अति उत्तम नगर है। इसके भाँति सुन्दर नगर कम दिखलाई पड़ते हैं। स्थान २ पर कूप विद्यमान हैं, प्रशस्त लम्बी २ सड़कें और गगनभेदी अट्टालिकाएँ नगर की शोभा को द्विगुणित करती हैं। स्थान-स्थान पर वायुसेवनार्थ रमणीक उद्यान भी हैं। सर्व प्रकार से पूना नगर समृद्धिशाली और क्षमता सम्पन्न है। देशदेशान्तरों के व्यवसायी यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं, नाना भांति के फल फूल, भाँजी तरकारी आदि का प्रशस्त बाजार देखकर तो मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है। रेशमी, सूती, ऊनी तथा ज़री के एक से एक बहुमूल्य सुन्दर वस्त्रों को देखकर नेत्र और भी उत्सुकता से देखने लगते हैं। शिल्पकारों का कला कौशल देखकर मैं स्तम्भित हो गया। संसार के सर्व प्रदेशों की वस्तुएँ पूना नगर में प्राप्त हो सकती हैं। युद्ध विद्या के नाना भाँति के अस्त्र-शस्त्र तैयार करने के कारखाने विद्यमान हैं। पूना नगर के समस्त प्राणीमात्र की ओर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि नर नारीगण सुख की कृपामयी गोद में अठखेलियाँ कर रहे हैं। कोई भी ऐसा प्राणी दृष्टिगोचर नहीं हुआ जो विद्याहीन हो तथा धनादि के लिये ग्रसित हो। शिक्षा का भी विशेष रूप से प्रबन्ध है। बालकों को विद्याध्ययन के साथ साथ शारीरिक विद्या का भी अध्ययन यथार्थ रूप से कराया जाता है। प्रत्येक युवकों को तलवार आदि अन्यान्य अस्त्रों का संचालन सिखलाया जाता

है। पूना नगर में कई एक अखाड़े हमने देखे जहाँ प्रातःकाल और सायंकाल नगर के तरुण युवक एकत्रित होते और तलवार भाला, कृपाण, कटार, बन्दूक आदि चलाना सीखते हैं। कुछ अखाड़ों में बालिकायें भी शारीरिक व्यायाम करती हुई दृष्टिगोचर हुईं। पूना नगर में धन कुबेरों की संख्या विशेषरूप से है। नगर के नर नारीगण सुवर्णरत्न जड़ित आभूषणों से अलंकृत दिखाई देते हैं। पूना में तैयार की हुई वस्तुओं का प्रतिदिन विनिमय होता है। नगर चोर, दस्यु ठगादि उपद्रवों के भय से मुक्त है। नगर में चारो ओर क्रान्तिकारी वीर पुरुषों को अवलोकन कर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यहाँ का वाणिज्य व्यवसाय विशेष विस्तृत है। पेशवा का शासन नागरिकों के प्रति अत्यन्त सुन्दर है तथा नागरिक अपने प्रिय पेशवा के लिये तन, मन धन से प्रस्तुत रहते हैं। वास्तव में पूना नगर सम्पूर्ण सुखद वस्तुओं से परिपूर्ण है।





निजामुल्मुल्क ने सन् १७२० ई० में महाराष्ट्रपति को चौथ और सरदेशमुखी देना बन्द कर विद्रोह का बीज बो दिया था। खानदेश के मत्त मुगलगण विद्रोही वृक्ष के नीचे खड़े होकर महाराष्ट्र कर्मचारियों के 'स्वत्व प्राप्ति' कार्य में बाधा उपस्थित करने लगे। पेशवा बाजीराव ने विद्रोहियों को दमन तथा चौथ सरदेशमुखी प्राप्त करने के निमित्त महाराष्ट्रवीर सेनानायक 'रामचन्द्र गणेश' को विशाल सेना के साथ खानदेश पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। यद्यपि विद्रोही मुगलमण्डल ने सेनानायक राम-

चन्द्र गणेश को चौथ और देशमुखी वसूल करने में अनेक अड़चने डालीं थीं तथापि महाराष्ट्र वीर रामचन्द्र ने अपने विक्रम द्वारा विद्रोही मुगलों का मद चूर्ण कर महाराष्ट्रपति का सब कर वसूल किया। इसके पश्चात् बाजीराव ने 'उदयजी प्रमार' नामक वीर पुरुष को विशाल सेना के साथ इन दो प्रदेशों का कर प्राप्त करने के लिये भेजा और साथ ही साथ मालवा देश पर भी आक्रमण करने की आज्ञा दी। महाराष्ट्रगण तो पहले ही से मालवा प्रदेश में चौथ पद्धति प्रसारित करने का प्रयत्न करने आते थे क्योंकि बाजीराव ने सन् १७१९ ई० में दिल्ली दरबार से मालवा देश से चौथ प्राप्त करने की सनद मिली थी। अतः उन्होंने बाहुबल द्वारा उस कर को वसूल कर लेने का प्रयत्न किया।

सेना नायक उदय जी प्रमार को बाजीराव ने मालवा के प्रत्येक राजा के नाम चौथ देने के सम्बन्ध में महाराष्ट्रपति के नाम से उक्त आदेशपत्र भी दिया था। वीर उदयजी ने बड़ी ही वीरता और कार्य पटुता से इस टेढ़े कार्य का सम्पादन किया और सरदेशमुखी प्राप्त कर राजधानी सितारा लौट आये।

इसके पश्चात् पुनः मालवा में विद्रोह के अंकुर उत्पन्न होने लगे। इस बार उदयजी के साथ स्वयं पेशवा बाजीराव ने सन् १७२३ ई० के दिसम्बर मास में मालवा पर आक्रमण किया। बाजीराव का आक्रमण सुनकर ब्राह्मण राजा गिरिधर ने जो कि पहले मालवा का सरदार था, मुगलों का पक्ष अवलम्बन कर महाराष्ट्रवाहिनी की प्रगति को रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया। परन्तु विशाल सागर

के गगन चुम्बी लहरों की भाँति महारष्ट्रीय सेना आगे बढ़ती गई और अन्त में ब्राह्मण राजा गिरिधरजी को महाराष्ट्रपति से विद्रोही होने का परितोषिक मिल गया। उन्हें महाराष्ट्रपति का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा।

उस समय उत्तर भारत में प्रविष्ट होने के लिये मालवा देश, द्वारस्वरूप था। इसलिये बाजीराव ने मालवा को सम्पूर्णरूपसे हस्तगत करके क्रमशः उत्तर भारत में मुगलों द्वारा शासित प्रदेशों पर महाराष्ट्रीय पताका फहराने का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। परन्तु प्रतिनिधि श्रीपतिराव के कारण उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। बाजीराव को समस्त महाराष्ट्र वर्ग का प्रियपात्र देखकर श्रीपतिराव ईर्ष्या करने लग गये थे। उनकी आन्तरिक इच्छा यह थी कि पेशवा बाजीराव अपने विक्रम और कार्य-दक्षता का प्रकाश कर महाराष्ट्रपति के अधिक प्रिय पात्र न बन सकें, और वे इस विषय में सदा सचेष्ट रहा करते थे। जब कभी बाजीराव महाराज शाहू के निकट उत्तर भारत में युद्धादि का प्रसङ्ग छेड़ते तो प्रतिनिधि श्रीपतिराव नाना प्रकार के तर्कजाल द्वारा उनके प्रस्ताव का खण्डन करने में अग्रसर होते। बाजीराव की भाँति महाराज शाहू का भी, उत्तर भारत को आधीनस्त बना लेने का पूर्ण विचार था। परन्तु प्रतिनिधि श्रीपतिराव के कई बार मना करने पर उन्होंने राज्य के सूर सामन्त तथा सरदारगणों की राय लेने के हेतु एक विराट दर्बार की आयोजना की। इस राज सभा में समस्त उच्च पदाधिकारी उपस्थित थे।

महाराष्ट्रपति के सभापति का आसन ग्रहण करने पर प्रतिनिधि श्रीपतिराव ने बाजीराव के प्रस्ताव के प्रतिवाद में एक व्याख्यान दिया।

हम अपने पाठक तथा पाठिकाओं के विनोदार्थ प्रतिनिधि श्रीपतिराव के व्याख्यान को नीचे उद्धृत कर देते हैं—

"पेशवा बाजीरावने उत्तर भारतमें युद्ध कर राज्य विस्तार करने का जो प्रस्ताव उपस्थित किया है वह विचारपूर्ण नहीं, केवल जोश के आवेश में आकर इसका प्रसंग छेड़ा है। वर्त्तमान समय में क्या हमलोगों की इतनी भी शक्ति नहीं कि एक सामान्य विद्रोह का दमन कर सकें ? निजाम सेनासहित हमलोगों का द्वार-देश रोके हुये युद्ध की तैयारी कर रहा है और हमलोग इस यवन जाति से समर करने में भी असमर्थ हैं। इतना ही नहीं वरन जो हम लोगों का प्राप्त चौथ और सरदेशमुखी सत्व निर्धारित है वह भी निर्विघ्नतापूर्वक प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में सम्मुख उपस्थित शत्रुओं का दमन न कर मालवा विजय करने में प्रवृत होना किसी भाँति उचित नहीं। सबसे पहले अपने अंगों को प्रबल बनाना हमरा प्रथम कर्त्तव्य है। आजकल कोल्हापुराधिपति के साथ हम लोगों का ईर्ष्याभाव बढ़ता जारहा है यह आप लोगों को भलीभाँति मालूम है तथा कर्नाटक प्रदेश में छत्रपति महाराज शिवाजी ने अपने भुजबल द्वारा जिस राज्य की स्थापना की थी उसका पुनरुद्धार करना अत्यावश्यक है। अतः इन सब सम्मुख आये हुए विपत्तियों को मार्ग से हटाये बिना ही उत्तर भारत पर आक्रमण

करना, महाराष्ट्र राज्य के लिये किसी भी प्रकार से हितकर नहीं हो सकता। हमारे शरीर में भी तरुण बाजीराव पेशवा की भाँति धैर्य और साहस विद्यमान है, भारत में महाराष्ट्रीय पताका फहराने की प्रबल इच्छा है परन्तु यह समय विदेश में जाकर वीरता प्रकाश करने का नहीं वरन स्वदेश के उपद्रवों के दमन करने का है। भली-भाँति समय का अवलोकन करते हुए किसी भी कार्य की ओर अग्रसर होने के पूर्व निज शक्ति का पूर्णरूपसे विचार कर लेना प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है। अतः इस समय उत्तर भारत के लिये युद्ध यात्रा करना हम किसी भी प्रकार से महाराष्ट्र राज्य के लिये हितकर समझकर न मानेगें।"

प्रतिनिधि श्रीपतिराव का व्याख्यान समाप्त होते ही बाजीराव ने उसके खण्डन में जो वक्तृता दी उसका सारांश इसप्रकार है—

"हमारे माननीय प्रतिनिधि महोदय का उपदेश अत्यन्त आश्चर्यजनक है। इस समय मुग़ल साम्राज्य रूपी महावृक्ष की विस्तृत शाखायें जीर्ण होकर धराशायी हो रही हैं। उस महावृक्ष को समूल नष्ट करने का यह सुअवसर है। ऐसा उत्तम अवसर पुनः प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि मुग़ल बादशाह भी इस समय महाराष्ट्रों के मुखापेक्षी हो गये हैं। वीर महाराष्ट्रों की सहायता से मुग़लपति अपने अधिकारों की रक्षा किया चाहते हैं। इस सुअवसर पर यदि महाराष्ट्रगण यथोचित पराक्रम प्रकाश करें तो निश्चय ही हमलोगोंके राज्य की वृद्धि होगी और हिन्दू साम्राज्य स्थापित हो जायगा। केवल निजामुल्मुल्क के भय से

मुगल साम्राज्य को विजय करने का सुअवसर परित्याग कर देना बुद्धिमानी का कार्य नहीं है। इसप्रकार भयभीत होने से भला कहीं राज्य की वृद्धि हो सकती है। कभी नहीं, आप लोगों को यह भली भाँति मालूम है कि स्वर्गीय छत्रपति महाराज शिवाजी दौलताबाद में औरंगजेब की भाँति भीषण शत्रु के रहते हुए भी बीजापुर तथा गोलकुण्डा के सुलतानों से युद्ध करने के निमित्त चल पड़े और रणयात्रा से मुख नहीं मोड़ा। महाराज शम्भाजी कि मृत्यु के पश्चात् महाराज राजाराम को भी अनेक बार धैर्य्य तथा साहस से काम लेना पड़ा था। स्वयम् महाराज शाहू जब मुगलों के द्वरा बन्दी हुए थे और समस्त महाराष्ट्र दिल्लीपति के आधीन हो गया था, उस समय "जञ्जी" दूर्ग की थोड़ी सेना के साथ महाराज राजाराम ने मुगल शासन को नष्ट भ्रष्ट, करने का प्रयत्न किया था। स्वदेश पर विपत्तियों के बादल मड़राने पर भी उनके बीर हताश नहीं हुए। उन बीरों ने बड़ी बीरता के साथ औरंगाबाद आदि मुगल प्रदेशों पर आक्रमण किया। यदि वे लोग भी प्रतिनिधि महाशय की भाँति भीरुता प्रकाश करते तो निश्चय किसी ओर के न रहते और कोई कार्य साधन भी न कर पाते। कोल्हापुराधिपति के साथ जब चाहे सन्धि करके कर्णाटक की सुव्यवस्था स्थापन की जा सकती है। रहा निजाम का भय, परन्तु निजाम से भयभीत होने का कोई भी कारण नहीं है। जब हम प्रचण्ड शत्रु मुगलों से महाराज की मुक्ति और स्वदेश का उद्धार करने में पूर्णतया सफलता प्राप्त कर चुके हैं तब कोई कारण नहीं

कि हमलोग पुनः भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित न कर सकें। मैं केवल महाराज की आज्ञा चाहता हूँ। आज्ञापत्र प्राप्त होने पर नवीन सेना संगठित कर मुगल—साम्राज्य का सूर्य अस्त कर देने का प्रयत्न करूंगा। अहंकारी निजामुल्मुल्क को भी ध्वंस करने का भार मैं ग्रहण करता हूँ। परलोकगत छत्रपति महाराज शिवाजी की भी यह उत्कट इच्छा थी कि समस्त भारतवर्ष से यवन जाति का नाश हो और हिन्दू साम्राज्य स्थापित हो। परन्तु दैव के कोप से अथवा महाराष्ट्रों के दुर्भाग्य से महाराज का देहान्त हो जाने के कारण कार्य पूरा न हो सका। परन्तु महाराष्ट्रपति शिवाजी के पुण्य प्रताप से मैं उस स्वर्गीय महात्मा के कार्य को पूर्ण करने का प्रयत्न करूंगा और सफलता प्राप्त करने का करूंगा। पितृदेव के साथ—पर्यटन करते—करते भली भाँति उत्तर भारत की व्यवस्था स्वचक्षु से अवलोकन कर आया हूँ। भारतवर्ष के राजों महाराजाओं के साथ पहले ही से हमलोगों की सन्धि हो चुकी है। इस समय हम महाराज की आज्ञा पाने पर कार्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं। प्रतिनिधि महाशय को यदि कर्णाटक और कोल्हापुराधिपति का कार्यक्रम अव्यवस्थित जान पड़े तो वे राज्य के बड़े बड़े सर्दारों के साथ प्रस्तुत सेना लेकर प्रयाण करें और महाराज की आज्ञा पाते ही मैं उत्तर भारत पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान करूँगा।"

इसप्रकार वीर बाजीराव की ओजस्विनी भाषा में उत्साहपूर्ण वीरोचित वक्तृता सुनकर समस्त सभासदों के हृदय में वीरता का

श्रोत उमड़ उठा। केवल संभ्रान्त सूर सर्दार गणों ने ही नहीं, वरन स्वयं महाराज शाहू ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी भूरि भूरि प्रसंसा करते हुए कहा—"क्यों नहीं, आखिर आप पेशवा बालाजी के ही तो पुत्र हैं। आपके समान वीर जिसके पक्ष में हो तो वह पक्ष उत्तर भारत ही क्या हिमाचल के सदूर देशों पर भी महाराष्ट्रीय पताका फहरा सकता है, इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं।" आप मेरी आज्ञानुसार ससैन्य उत्तर भारत विजय हेतु सहर्ष जा सकते हैं। निजाम और कर्णाटक विजय का भार हमलोग देख लेगें।"

बाजीराव की वीरतापूर्ण वक्तृता से राजदर्बार में उनकी प्रशंसा का पुल बंध गया था। इतना ही नहीं वरन सितारा नगर के समस्त स्त्री पुरुषों के हृदय पर उनके प्रभुत्व ने आसन जमा लिया था। इधर श्रीपतिराव के प्रति सूर सामन्त तथा नागरिकों का जो भाव था वह दिनो दिन घटने लगा। सितारा के राजदर्बार में भी प्रतिनिधि महाशय का जो प्रभुत्व और गौरव था, वह इस घटना से नष्ट होने लगा। स्वयम् महाराज शाहू भी श्रीपतिराव से विमुख होकर पेशवा के पक्ष-पाती हो गये और अपनो आन्तरिक इच्छा की पूर्ति तथा राष्ट्र को निर्भय करने के निमित्त उन्होंने बादशाही मुल्कों को विजय करने की 'सनद' पेशवा को प्रदान किया।

इसप्रकार राज दर्बारियों और महाराज शाहू से सम्मानित हो बाजीराव पेशवा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि भी अत्यन्त विलक्षण और अथाह समुद्र की भाँति थी। वे अदूरदर्शी पुरुष

थे। उनके समान राजकार्य में परम प्रवीण पण्डित उस समय महाराष्ट्र देश में और कोई दूसरा नहीं था। उनका स्वभाव सागर की भाँति गम्भीर तथा उनकी वाणी अत्यन्त मधुर थी। वे विलासिता से कोसों दूर भागते थे। बाहरी आडम्बर से उन्हें विशेष घृणा थी। मानसिक शक्ति के साथ-साथ शारीरिक शक्ति भी यथेष्ट थी। कभी-कभी तो समर भूमि में चार-चार पाँच-पाँच दिन तक घोड़े की पीठ पर ही व्यतीत हो जाते थे परन्तु घबराहट का लेशमात्र चिन्ह भी उनकी मुखाकृति पर प्रकट नहीं होता था।





पेशवा के पुत्र

वीर बाजीराव पेशवा को सन् १७२१ ई० के नवम्बर मास में एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उस कुमार को बाल्यावस्था में सबलोग "नाना साहेब" के नाम से पुकारते थे। परन्तु महाराष्ट्रीय पद्धति के अनुसार पिता ने पुत्र का नामकरण अपने नाम पर रखा। वही होनहार युवक भविष्य में 'बालाजी बाजीराव के नाम से प्रख्यात हुआ। बाजीराव ने जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपनी समस्त आयु व्यतीत की थी, उस अवशिष्ट उद्देश्य को उनके सुयोग्य पुत्र बालाजी बाजीराव ने अपने अमोघ

विक्रम द्वारा बहुत अंश में सिद्ध किया था। उनके समय में भारतवर्ष के अधिकांश देशों में हिन्दू—सम्राज्य स्थापित था।

प्रसिद्ध वीर रघुनाथराव, बाजीराव के द्वितीय पुत्र थे। इन दो कुमारों के अतिरिक्त बाजीराव के दो और पुत्र हुए थे जिनका नाम 'जनार्दन' और 'रामचन्द्र' था। इन दो बालकों की मृत्यु बाल्यावस्था में ही हो गई थी। अस्तु! रघुनाथराव भी अपने पिता के समान शूरवीर थे। उन्होंने निज विक्रम द्वारा 'अटक' नगर में माहाराष्ट्रीय पताका फहराकर पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण की थी। बाजीराव ने अपने इन दोनों पुत्रों को युद्ध विद्या के साथ साथ धर्मशास्त्र का भी अध्ययन पर्याप्त रूपसे करा दिया था।

बालाजी बाजीराव रघुनाथराव की अपेक्षा सब बातों में विशेष पण्डित थे। वह पिता के समान ही राजनितिज्ञ और वीर पुरुष थे। शौर्य और साहस तो उनमें कूट कूटकर भरा था। उनकी प्रकृति शान्त थी। किन्तु उनके भ्राता रघुनाथराव वीर साहसी योद्धा होने पर भी उनके समान और गुणों में कम थे। दैवगति से उनमें अदूरदर्शिता का अभाव था और विलासप्रियता के वशीभूत होने के कारण रघुनाथराव का अधिकांश जीवन कलंकित हो गया था। उन्हें इस कलंक कालिमा के कारण जीवन की अन्तिम घड़ी तक निकटवर्तीय सिद्धियों का कटुवचन सहना पड़ा था और साथ ही साथ महाराष्ट्र साम्राज्य के अधिकांश भागों से हाथ धोना पड़ा था।



९

प्राचीन समय से उस समय तक महाराष्ट्रीय सेना के संयोजित करने में एक विलक्षण नियम निर्धारित था।

नवीन सेना, कर्णाटक युद्ध, निज़ाम का लक्ष

नवीन महाराष्ट्र सनिकों को सैन्य दल में सम्मिलित करने के कारण उन्हें 'लूट' में से कुछ भाग देना पड़ता था। परन्तु बाजीराव पेशवा ने महाराष्ट्रपति की आज्ञा प्राप्त कर नूतन सैन्य संग्रहार्थ दो लाख रुपया ऋण लेकर प्राच्य प्रथा को हटाने के लिये

सैनिकों को पर्याप्त वेतन देकर स्थायी रूप से सैन्य संगठित किया। बस उसी काल से उपरोक्त लूट का कुछ भाग देने का नियम बन्द हो गया। अस्तु! उस नूतन सेना में अनेकानेक महावीर योद्धा-गण सम्मिलित थे जिन्होंने भविष्य में परम प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उनमें से * मल्हार राव होलकर, ‡ गोविन्द राव बुन्देला, † राणो जी सेन्धिया, और उदय जी प्रमार आदि वीरों के नाम उल्लेखनीय हैं।

---

* मल्हार राव होलकर पूना नगर के अन्तर्गत नीरा नदी के तट-वर्ती 'होल' ग्राम में रहते थे। उनके पिता श्रीग्राम नायक के आधीन कर्मचारी थे। उनके पूर्वज भेड़ों को पालकर उदर निर्वाह करते थे इसलिये मल्हारराव भी बचपन में भेंड़ चराया करते थे। युवा होने पर वे महाराष्ट्रीय सेना में भर्ती हुये। नवयुवक मल्हार राव की अलौकिक बुद्धि तथा अतुल पराक्रम देखकर बाजीराव ने उन्हें अपनी सेना में प्रविष्ट कर लिया। इसके पश्चात् मल्हारराव अपने प्रचण्ड पराक्रम द्वारा दिनो दिन उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होने लगे और अन्त में वे एक राज्य के अधीश्वर हो गये।

‡ राणोजी सेन्धिया, ग्वालियर के सेन्धिया वंश के प्रथम पुरुष हैं। पहले वह मुगलों के आधीन रह कर कार्य करते थे। दिनों दिन मुगलों की अवनित और महाराष्ट्रों की उन्नति देखकर वह पेशवा बालाजी विश्व-नाथ का पक्ष अवलम्बन कर घोड़ों की देख भाल का कार्य करने लगे। राणो जी सेन्धिया के साथ उनका विशेष बन्धुत्व था इस कारण सेन्धिया

महाराष्ट्रपति से उत्तर भारत को विजय करने का आज्ञापत्र प्राप्त कर वीर बाजीराव पेशवा ने वीर योद्धाओं के साथ मल्हार राव होलकर, राणोजी सेन्धिया, और गोविन्द राव बुन्देला आदि प्रमुख वीरों की एक विशाल सेना लेकर 'मालवा' प्रदेश पर आक्रमण किया। मालवाधिपति गिरिधर राय ने अपनी शक्ति भर युद्ध किया। वीर बाजीराव तथा उनके सहायक सेनापतियों ने राजा गिरिधर राय की सेना को पराजित कर उन्हें बन्दी बनाया। राजा गिरिधर राय के बार-बार क्षमा प्रार्थना करने पर दयालु हृदय पेशवा ने उनको मुक्त करते हुए उनका राज्य लौटा दिया था। परन्तु राजा गिरिधर के हृदय में बाजीराव के प्रति जो प्रतिहिंसा

की प्रार्थना द्वारा वह उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे। परन्तु उनके जीवन का अधिकांश दिन भृत्यभाव में ही व्यतीत हुआ था।

† गोविन्द राव बुन्देला रत्नागिरि जिला के अन्तर्गत 'नेउर' ग्राम के निवासी थे। इनके पिता लेखक का काम करते थे। अचानक पिता की मृत्यु होने से उन्हें अन्न जल के लिये विशेष कष्ट उठाना पड़ता था। अन्त में वे बाजीराव की शरण में आकर उनकी सेवा करने लगे। उन्होंने अपनी कार्य दक्षता और साहस दिखाकर पेशवा को प्रसन्न किया। बाजीराव ने उनको सूबेदार के पद पर प्रतिष्ठित किया। वीर गोविन्द राव जीवनपर्यन्त पेशवा के प्रियपात्र बने रहे। इस महावीर की मृत्यु पानीपत के युद्ध में हुई। इन्हीं तीन व्यक्तियों ने तन मन से बाजीराव की सहायता कर राजा गिरिधरराय को समराङ्गण में परास्त किया था।

की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी वह शान्त नहीं हुई थी। अतः उन्होंने पुनः महाराष्ट्रपति का निर्धारित चौथ देना अस्वीकार कर दिया। इस बार पुनः वीर बाजीराव ने उपरोक्त सेनापतियों के साथ मालवा पर आक्रमण किया और राजा गिरिधर राय को पूर्णतः पराजित कर विजय लाभ किया। मालवा विजय करने के साथ ही साथ बाजीराव को आशा से अधिक धन प्राप्त हुआ। इस युद्ध में उपरोक्त सेनापतियों ने अद्भुत पराक्रम दिखाया था। इस कारण प्रसन्न होकर वीर पेशवा ने पुरस्कार स्वरूप उन्हें मालवा प्रदेश का 'चौथ' और सरदेश मुखी का अधिकार दे दिया तथा सेना के उदर निर्वाह के निमित्त राज्य के तृतीय भाग की आय का प्रायः आधा अंश खर्च करने की आज्ञा दे दी। यह सन् १७२५ ई० की घटना है।

बाजीराव के शासनकाल में मालवा के निवासी महाराष्ट्र शासनकर्त्ता के विशेष भक्त हो गये थे। इसी कारण महाराज शाहू अल्प समय में ही समस्त मालवा प्रदेश को अपने आधीन कर सके थे।

छत्रपति महाराज शिवाजी ने कर्णाटक प्रदेश अधिकार में कर लिया था। परन्तु जब निजाम दक्षिण भारत की सूबेदारी पद पर नियुक्त हुए तो उन्होंने कर्णाटक को अपने अधिकार में कर लिया। उस प्रदेश को यवनाधिपति से मुक्त करने के लिये प्रतिनिधि श्री पतिराव की विशेष इच्छा थी। सन् १७२० ई० से ही निजामुल्मुल्क से कर्णाटक को उद्धार करने की चेष्टा हो रही थी। अनेक बार महाराष्ट्रीय सेनापतियों ने निजाम के साथ युद्ध छेड़ा,

परन्तु व्यर्थ। अन्त में सन् १७२६ ई० में प्रतिनिधि महोदय ने समस्त सेनापतियों को लेकर एक ही साथ निजाम पर आक्रमण करने का विचार किया।

जब बाजीराव पेशवा मालवा प्रदेश विजय कर महाराष्ट्रपति के सन्निकट पहुँचे, तो महाराज शाहू ने श्रीपतिराव के अनुरोध से उन्हें कर्णाटक प्रदेश को अपने राज्य में सम्मिलित करने के लिये रणदुन्दुभी बजाने की आज्ञा दी। बाजीराव ने अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा था कि, यह समय कर्णाटक विजय करने का नहीं जान पड़ता है। सुअवसर आने पर महाराज की इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।'

बाजीराव के इस राजनीतिपूर्ण विचार पर कुछ भी ध्यान न दिया गया और प्रतिनिधि महाशय के विशेष अनुरोध से तथा महाराज शाहू के बार-बार कहने पर, विवश होकर वीर पेशवा ने कर्णाटक विजय करने के हेतु युद्ध यात्रा की। अपने अकथनीय परिश्रम द्वारा सम्पूर्ण देश से 'चौथ' और सरदेशमुखी प्राप्त कर कर्णाटक का अधिकांश भू भाग पुनः अधीकृत कर लिया परन्तु उस युद्ध में महाराष्ट्रपति के अधिक सैनिकों को प्राणाहुति देनी पड़ी थी।

इस युद्ध में वीर पेशवा के अद्भुत पराक्रम को देखकर शत्रुओं की सेना थर्रा उठी। उनके वीरतापूर्ण तेजस्वी मुखमण्डल तथा चमचमाती हुई दोधारी तलवार का दर्शन करते ही निजाम को पसीना हो आया। बाजीराव द्वारा पराजित होकर, उसने महाराष्ट्रीय शक्ति की पूर्ण परिचय प्राप्त किया। उस समय तक दो

एक छोटे-मोटे युद्धों में निज़ाम के कुछ सेनापति पेशवा द्वारा धाराशायो हुए थे, परन्तु बाजीरावने भूभाग पर अधिकार प्राप्त नहीं किया था। किन्तु इस वार कर्णाटक के भीषण युद्ध में निज़ाम को विशेषरूप से क्षतिग्रस्त होकर अधिकांश भूभाग खोना पड़ा।

कर्णाटक युद्ध के पश्चात् बाजीराव पेशवा निजाम के प्रचण्ड शत्रु बन बैठे। निज़ाम को पूर्णरूप से पराजित करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य बन गया। इधर निज़ाम को इन प्रचण्ड शक्तिशाली महाराष्ट्र वीरों की उन्नति में बाधा डालना भी नितान्त आवश्यक जान पड़ा। क्योंकि तत्कालीन कतिपय महाराष्ट्रीय वीरों और बाजीराव पेशवा के अतिरिक्त अन्य कोई भी निजाम को अभ्युदय के शिखर से घसीटनेवाला न था। इतने दिन तक तो निजाम दिल्ली के दरबार में प्रधानपद प्राप्त करने के फेर में पड़े थे परन्तु कर्णाटक युद्ध में पराजित होने के कारण उनका वह विचार एक बारगी पलट गया। वह दिल्ली दर्बार में प्रधान के पद को लक्ष्य-कर बादशाही ठाठ-बाटके साथ, जीवन के आनन्द का जो सुख स्वप्न देख रहे थे उसे उन्हें एकाएक भावी संकट के आजाने से भूल जाना पड़ा। सन् १७२२ ई० में दिल्ली दरबार की शोचनीय अवस्था देखकर निजाम को बादशाह के प्रधान मन्त्री (वज़ीरे-आजम) का पद प्राप्त करना हितकर नहीं जान पड़ा। अतः थोड़े ही दिनों में उन्होंने मन्त्री पद परित्याग कर दक्षिण देश में अपनी महत्वाकांक्षा सिद्ध करने के हेतु एक नवीन स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की प्रतिज्ञा की। सब से पहले उन्होंने दिल्लीपति

के विरुद्ध विद्रोह किया। तदुपरान्त अपने को दक्षिण देश का स्वतन्त्र राजा होने की घोषणा की। दिल्लीश्वर का तो उन्हें तिलमात्र भी भय न था। उनको यदि कुछ भय था तो वह महाराष्ट्रीय वीरगणों का था और वास्तव में यदि पेशवा विघ्न स्वरूप खड़े न होते तो दक्षिण देश में निज़ामका आधिपत्य हो जाने में कोई कसर नहीं रह जाती। अस्तु! निजाम ने सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कट्टर शत्रु महाराष्ट्रों को दमन करना निश्चय किया। यही निज़ाम के जीवन का अन्तिम लक्ष था।



१०

निज़ाम का कौशल, पालपोखड़ का युद्ध, निज़ाम की दुर्दशा, बाजीराव का अपूर्व साहस, हिन्दू राजा छत्रसाल का निमन्त्रण।

महाराष्ट्रीय सेना, मालवा विजय कर गुजरात और उत्तर भारत को आधीन करने के लिये अग्रसर हुई देखकर निज़ामुल्मुल्क मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अनुमान किया था कि यदि महाराष्ट्र वीरों की दृष्टि उत्तर भारत की ओर रहेगी तो वह अधिक संख्या में सेना एकत्रित करने का

अवसर प्राप्त कर सकेगा। इसके अतिरिक्त बादशाह और पेशवा में युद्ध ठन जाने से महाराष्ट्रीय सेना बहुत कुछ दुर्बल और शक्ति-हीन हो जायगी। उस समय अपनी मनोवाञ्छित इच्छा फलीभूत होने की संभावना हो सकती है।

इसप्रकार निजाम वैभवशाली होने का मन ही मन ख्याली पुलाव पका रहा था कि, अचानक कर्नाटक के प्रलयकारी संग्राम में महाराष्ट्रीय सेना का युद्ध कौशल देख उसे बाजीराव के शक्ति का परिचय मिल गया। जिन महाराष्ट्र वीरों को वह दुर्बल और जर्जर समझ रहे थे उन्हीं से निजाम को पराजित होना पड़ा था।

दिल्लीश्वर से 'चौथ और सरदेश मुखी की सनद मिल जाने के कारण महाराष्ट्रीय सेना कर वसूल करने के निमित्त प्रतिवर्ष निजाम के राज्य में पदार्पण करती थी। निजामुल्मुल्क को यह अच्छा नहीं लगा। उसने सोचा कि, ये कट्टर शत्रु प्रति वर्ष चौथ' आदि वसूल करने के साथ राज्य की राजनैतिक प्रगति को भी देख जाते हैं। यदि यह बन्द नहीं किया जायगा तो अवश्य महाराष्ट्र लोग सहज ही में राज्य प्राप्त कर लेगें। ऐसा विचारकर चतुर निजाम ने इस विडम्बना को रोकने के लिये महाराष्ट्रपति के पास एक करुणाजनक पत्र लिखा।

निजाम को यह भलीभाँति अवगत था कि भेजे हुए पत्रमें लिखे हुए प्रस्ताव को पेशवा कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। इसलिये उसने सितारा में वीर वाजीराव की अनुपस्थिती में महाराज शाहू के सन्निकट एक प्रस्ताव पेश किया वह इस प्रकार है—

"यदि महाराष्ट्रपति हमारे समस्त राज्य से 'चौथ और सर-देशमुखी' कर उठालें तो हम 'इन्दापुर' के निकटवर्तीय कई ग्राम जागीर स्वरूप भेंट करेंगे और साथ ही साथ कई करोड़ नकद रूपया भी प्रदान करेंगे।"

चतुर निजामुल्मुल्क ने महाराज शाहू के निकट केवल प्रस्ताव का समर्थन करा लेने के लिये द्रव्य द्वारा राजप्रतिनिधि श्रीपतिराव को भी अपने पक्ष में कर लिया था। (यहाँ यह कह देना अयुक्त न होगा कि निज़ाम और राजप्रतिनिधि महाशय का यह गोपनीय व्यापार किसी को अवगत न था)।

* श्रीपतिराव ने निजाम द्वारा विशेष धनराशि प्राप्तकर लोभ के वशीभूत हो उचित अवसर का उपयोग किया। अर्थात् निज़ाम के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए महाराष्ट्रपति को यह सलाह दी

---

* शोक ! जिस राज्य में बाजीराव ऐसे बीर, यवन जाति एवम् मुगलों के कट्टर शत्रु होकर अनेकों समरभूमि की असहनीय पीड़ाओं को भोगते हुये भी स्वदेश के अतिरिक्त मुगलों द्वारा शासित अन्य राज्यों पर महाराष्ट्रीय पताका फहराने के लिये दिन रात प्राण हथेली पर लेकर और समस्त सुख ऐश्वर्य को लात मारकर चार २ पाँच २ दिन तक कच्चा चना चबाते हुये युद्ध भूमि में रणचण्डी मचाने वाले वीर थे, उस राज्य में थोड़ी सी धन राशि के लोभ में पड़कर राज्य को शत्रुओं के हाथ सौंप देने वाले राज प्रतिनिधि श्रीपतिराव ऐसे लोभी और पामर भी मौजूद थे। हिन्दुओं के पतन का सबसे बड़ा ज्वलन्त उदाहरण और क्या हो सकता है।

कि, निज़ाम के प्रस्तावानुसार कार्य करने से महाराष्ट्र-मण्डल का विशेष लाभ होगा तथा सहज ही में एक प्रचण्ड शत्रु अपना मित्र हो जायगा। अस्तु, महाराज शाहू ने प्रतिनिधि के बार-बार कहने से निजाम का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

जिस समय निज़ामुल्मुल्क का प्रस्ताव महाराष्ट्र के जयचन्द श्रीपति के सम्मुख उपस्थित था और राजनीतिज्ञ श्रीपतिराव उसके प्रस्ताव का समर्थन करते हुए बार-बार महाराज शाहू को उक्त प्रस्ताव स्वीकार करने का अनुरोध कर रहे थे, उसी समय बाजीराव ने औरंगाबाद के समीप सितारा राजधानी में प्रवेश किया। महाराज ने निज़ाम का भेजा हुआ प्रस्ताव पेशावा के सम्मुख उपस्थित किया। जिसे देखकर कूटनीतिज्ञ निज़ाम का कौशल उन्हें ज्ञात हो गया और उन्होंने नम्रतापूर्वक महाराष्ट्रपति को समझाते हुये कहा—"यदि किसी भी प्रकार निजाम के राज्य से चौथ और सरदेश मुखी का स्वत्व उठा दिया जायगा, तो उक्त राज्य से हम लोगों का शासन नष्ट हो जायगा और यवन जाति निर्भय हो जायगी। साथ ही साथ निज़ाम के हृदय से महाराष्ट्रपति का भय न्यून होकर उन्हें महाराष्ट्र वीरों के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचने का अवसर प्राप्त होगा। इस समय हम लोगों का कट्टर शत्रु एकमात्र निज़ाम ही है। चौथ और सरदेशमुखी आदि पद्धति उठा देने से वह निष्कंटक हो जायगा। इसी कारण उसने यह प्रस्ताव महाराज के पास भेजा है। अतः ऐसे प्रस्ताव को पास कर देना कभी भी उपयुक्त न होगा।"

कहना व्यर्थ है कि महाराष्ट्रपति ने बाजीराव के विचारानुसार ही निज़ाम का प्रस्ताव अस्वीकार कर लौटा दिया और प्रस्ताव के समर्थन में दिलचस्पी लेने के कारण, राज्य मन्त्री श्रीपतिराव की ओर से उनके मन में अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी।

इस प्रकार निज़ाम का चलाया हुआ पहला तीर लक्ष पर न पहुँच सका। अन्त में उसके हृदय में एक नवीन विचार उत्पन्न हुआ। उस चतुर राजनीतिज्ञ ने कोल्हापुराधिपति शम्भाजी का पक्ष ग्रहणकर महाराष्ट्र राज्य में विवादरूपी अग्नि प्रज्वलित करने की चेष्टा करना आरम्भ किया।

जिस समय महाराष्ट्रपतिके राजकर्मचारीगण निजाम के राज्यमें चौथ और सरदेशमुखी का कर वसूल करने के लिये उपस्थित हुए, उस समय निजाम ने उनसे कहा कि, कोल्हापुराधिपति एवम् महाराष्ट्रपति दोनों हमारे राज्य से कर प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं। अतः जब तक यह निर्णय न होगा कि दोनों में से कौन महाराष्ट्र राज्य का वास्तविक अधिपति है तब तक हम चौथ और सरदेशमुखी का प्राप्त धन किसी को भी न देंगे।

इस नूतन चक्र द्वारा निज़ामने शाहू के राजकर्मचारियों को अपने राज्य से लौटा दिया। पेशवा को उनका यह नवीन राजनैतिक कौशल ज्ञात न था। राज कर्मचारियों द्वारा निज़ाम की कूटनीतियुक्त बात सुनकर बाजीराव ने हलकारे द्वारा उसे यह कहला भेजा कि—"जिसके नाम, चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की बादशाही 'सनद' वर्त्तमान है, वही राज्य, चौथ आदि

प्राप्त करने का अधिकारी है। इसमें किसी के हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। मैंने आप के लक्ष्य को भलीभाँति जान लिया है। शम्भाजी और हम लोगों को युद्ध में प्रवृत्त कराकर दोनों पक्षोंका विनाश करना ही आपका मुख्य उद्देश्य है। परन्तु आपका यह उद्देश्य कभी फलीभूत नहीं हो सकता।

महाराष्ट्रपति की आज्ञा प्राप्त कर, चौथ और सरदेशमुखी का कर वसूल करने के लिये बाजीराव पेशवा ने राज्य के चुने-चुने वीरों को एकत्रित कर सन् १७२७ ई० के सितम्बर मास में निज़ामुल्मुल्क के विरुद्ध युद्ध यात्रा की। उधर निजाम ने भी महाराष्ट्रीय सेना तथा पेशवा की भवानी तलवार का सामना करने के निमित्त औरङ्गाबाद में डेरा डाल दिया। इसके पूर्वही निजाम ने कोल्हापुराधिपति शम्भाजी को गुप्तरूप से सैन्यदल के आगे नियुक्त किया था।

शत्रु सेना को देखते ही वीर पेशवा ने क्षुधापीड़ित सिंह की भाँति निजामी सेना पर आक्रमण किया। बाजीराव के असाधारण रणकौशल और भवानी तलवार की भयङ्कर मार से निजाम को छठी का दूध याद हो आया। बाजीराव ने सर्व प्रथम निजाम के अधीनस्थ 'जालना' प्रदेश में प्रवेश कर मुगल सेना को पददलित करते हुए लूट मार करनी आरम्भ की। उन्हें रोकने के लिये निजामका एक सेनापति इवाज़खाँ कुछ सेना लेकर अग्रसर हुआ। परन्तु वह पराजित हो भाग खड़ा हुआ। मार्ग में मुसलमानों के छोटे-छोटे गावों को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए बाजीराव ने बुर्हानपुर और

खानदेश में प्रवेश किया। इस समाचार को सुनकर निज़ाम ने अपनी समस्त सेना को एकत्रित कर बुर्हानपुर के रक्षार्थ कूच किया।

निज़ामी सेना बुर्हानपुर में एकत्रित हुई देखकर पेशवा के विचार में एक नवीन युक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने इने-गिने रणवीर सेनापतियों को सेना के साथ निज़ामुल्मुल्क को रोक रखने के लिये छोड़ स्वयम् गुजरात पर आक्रमण किया। वहाँ के सूबेदार 'सर बुलन्द खाँ' को परास्त कर उसके धन और रत्नों को लूट लिया।

इधर निज़ाम बुर्हानपुर में पेशवा की प्रतीक्षा करते करते थक गया। कई दिनों के पश्चात् उसने बाजीराव का गुजरात पर आक्रमण करने और उसको लूट लेने का समाचार सुना। फिर क्या था, वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर पूना नगरी को विध्वंस करने के लिये अपने सेनापतियों को आज्ञा दी। प्रधान सेनापति ने निज़ाम की आज्ञा पातेही दक्षिण की ओर प्रयाण किया।

गुप्तचरों द्वारा इस सम्वाद को सुनकर पेशवा ने अपनी सेना को गुजरात छोड़कर आगे बढ़ने की आज्ञा दी। मार्ग में मुगलों द्वारा शासित नगर-ग्राम आदि को लूटते और दग्ध करते हुए अहमदनगर के निकट पहुँचकर उन्होंने निज़ामी सेना के पृष्ठ भाग पर आक्रमण किया। बाजीराव को स्वयं अपनी सेना का पृष्ठभाग नष्ट करते देख निज़ाम को पूना ध्वंस करने का विचार परित्याग कर सन्मुख युद्ध करना पड़ा। रण-कुशल पेशवा ने

निज़ाम से युद्ध करते-करते और सेना को पीछा खदेड़ते हुये गोदावरी नदी के तटवर्ती 'पाल पोखड़' नामक एक विकट स्थान में ले जाकर चारो ओर से परिवेष्ठित कर लिया।

अपनी सेना को इस प्रकार परिवेष्ठित देखकर निजामुल्मुल्क प्राणपण से युद्ध करने लगे। एक ओर महाराष्ट्र वीरों का गगन भेदी 'हर हर महादेव का नाद और दूसरी ओर मुगल दल के 'अल्लाहो अकबर' की गूँज से दिग्दिग्न्त कम्पायमान हो गया। तोपखाने के साथ तोपखाना, अश्वारोहियों के साथ अश्वारोही, पैदल के साथ पैदल, इस प्रकार दोनों सेनायें परस्पर से भिड़कर अपनी अपनी विजय कामना के हेतु रण-चण्डी मचाने लगीं। यहाँ इतना कह देना अत्यावश्यक है कि इस महायुद्ध में यद्यपि बहु संख्यक महाराष्ट्र वीरों का बलिदान हुआ था किन्तु वीर पेशवा अधैर्य्य न हुए। अचल स्तम्भ की भाँति रणभूमि में डटे रहे। निजामी सेना को और भी पीड़ित करने के लिये उन्होंने निकट के ग्रामों का मार्ग बन्द कर दिया जिससे निजामी सेना को ग्रामों से किसी भी प्रकार की सहायता मिलना असम्भव हो गया।

इस महायुद्ध में -निज़ामी सेना के साथ, ससैन्य कोल्हापुराधिपति, दल-बल सहित सेनापति चन्द्रसेन यादव, राव रँभा निम्बलाकर आदि सेनापतिगण भी उपस्थित थे। इन सेनापतियों की सहायता से पेशवा को परास्त करने के लिये निज़ाम बार-बार शम्भाजी से प्रार्थना करने लगे। इस विषय पर निजाम के सेनापतिगण और महाष्ट्र सेनापतियों के परस्पर तर्क-वितर्क होने के

कारण फूट का बीज उत्पन्न होने लगा। उस समय सेनापति चन्द्रसेन यादव ने तीव्र स्वर में कहा—"मेरी सेना की अपेक्षा मुगल सेना की संख्या अधिक है। किन्तु महाराष्ट्रों की भाँति इन लोगों में साहस नहीं है, ऐसी अवस्था में मैं अकेला क्या कर सकता हूँ?"

इसके पश्चात् कोल्हापुराधिपति ने कहा—"एक तो पूर्व से ही मेरी सेना की संख्या थोड़ी है। फिर उसमें भी कुछ सैनिकों ने गुप्तरूप से पेशवा का पक्ष अवलम्बन कर लिया है। इसका मुझे दृढ़ सन्देह हो रहा है। अतः इन लोगों को हमारा प्राप्त द्रव्य प्रदान नहीं किया जायगा।"

शम्भाजी के उपरोक्त वचन को सुनकर उनके राज कर्मचारियों ने कहा—"धनराशि को राजा शम्भाजी के आधीन कर देने से वह विलास वासना में खर्च कर डालेंगे और हमें अन्न-वस्त्र के लिये रोना पड़ेगा तथा वेतन चढ़ा रहने से समस्त सैनिकगण विद्रोही बन जायँगे।"

इस प्रकार शम्भाजी तथा उनके सेनापतिओं का मनोभाव देखकर निज़ाम बहादुर ने अत्यन्त दुःखित होते हुए कहा—"बाजीराव महाराष्ट्र वीर हैं और आप लोग भी उन्हीं के वंशधर हैं। किन्तु बाजीराव के रण-कौशल का ध्यान न कर स्वयम् विपत्ति ग्रस्त हुए हैं, और मुझे भी इस भयङ्कर जाल में फँसाया है। यदि मेरी सहायता नहीं करनी थी तो पहिले ही कह देना था। ओफ्, धोका! महान् धोका!! आपलोगों पर विश्वास

करने से ही मेरी ऐसी दुर्दशा हुई। चतुर्दिक् से शत्रु ने घेरकर ग्राम में प्रवेश करने का मार्ग भी बन्द कर रखा है। युद्ध की सामग्रियाँ भी धीरे-धीरे घट रही हैं। किस भाँति रक्षा हो सकेगी 'अल्लाह' ही जाने।" इतना कह कर निजाम विचार सागर में गोता लगाने लगा।

इस प्रकार वृथा वाद-विवाद में कई दिन व्यतीत हो गये। परन्तु इस विपत्ति से उद्धार पाने का उपाय किसी भी चक्र-चूड़ा मणि के मस्तिष्क में न आया। सागर की भाँति चतुरङ्गिणी सेना दिन-प्रति-दिन खाद्य पदार्थ के अभाव से क्लान्त और क्षुधा-पीड़ित होने लगी और साथ ही उनकी युद्ध सामग्री भी समाप्त हो चली थी। इधर बाजीराव ने शत्रु सेना को दुर्बल देखकर महाराष्ट्रीय सेना को तीव्र वेग से आक्रमण करने की आज्ञा दी। फिर क्या पूछना था? पेशवा के महाराष्ट्र वीरों की बन्दूकों से सन-सनाती हुई गोलियाँ शत्रुपक्ष को ध्वंस करने लगीं। समस्त निजामी सेना में हाहाकार मच गया और उसके सैनिक अस्त्र-शस्त्र फेंककर भाग खड़े हुए।

यह देख निजामने विवश होकर पेशवा से सन्धि की प्रार्थना की।

यद्यपि ऐसे समय में महाराष्ट्र सेनापतियों ने पेशवा से निजाम को सम्पूर्णरूप से नष्ट करने का आग्रह किया, परन्तु वीर बाजीराव ने उनके प्रस्ताव पर असम्मति प्रकट करते हुए कहा—"इस समय निजाम हमारे शरणागत हुआ है। विपद्ग्रस्त

शत्रु को अभयदान देकर उसपर फिर आक्रमण करना, और तलवार उठाना वीर पुरुषों को शोभा नहीं देता। यह कार्य सर्वथा धर्म के विरुद्ध है। अतः शरणागत निजाम को खाद्य पदार्थ से सहायता कर सन्धि कर लेना ही हमारा कर्त्तव्य है। इस पर कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं।

इसके उपरान्त बाजीराव ने एक सन्धिपत्र तय्यार किया।

(१) निजामुल्मुल्क शम्भाजी का पक्ष त्याग करना होगा।

(२) जो राज कर्मचारी गण चौथ और सरदेश मुखी आदि प्राप्त करने के हेतु प्रति वर्ष निजाम के राज्य में जाते हैं उनकी रक्षा के लिये निजाम को कुछ दुर्ग महाराष्ट्रपति को प्रदान करना होगा।

(३) विगत वर्षो का जो चौथ और सरदेश मुखी स्वत्व शेष रह गया है वह शीघ्रताति शीघ्र चुकाना होगा।

(४) इस वर्त्तमान युद्ध का सम्पूर्ण व्यय देना होगा।

उपरोक्त सन्धिपत्र बाजीराव ने लिखकर निजामुल्मुल्क के पास भेजा। उसने शन्धि पत्र की शर्तों को स्वोकार करते हुए वीर पेशवा को अपने शिविर में आने की प्रार्थना की। वीर साहसी पेशवा केवल दो तीन वीरों के साथ भीषण शत्रु निज़ाम को प्रार्थना स्वीकार कर शिविर में चले गये।

निजामुल्मुल्क ने वीर पेशवा के साहस की परीक्षा करने के लिये कुछ मुगल सैनिकों का एक दल शिविर में गुप्त रूप से छिपा रक्खा था। उपयुक्त अवसर पाकर निजाम ने छिपे हुए सैनिकों की ओर कुछ संकेत किया। संकेत पाते ही कई सौ मुगल

सैनिकों ने वीर बाजीराव को चारो ओर से घेर कर बध करने के लिये चमचमाती हुई तलवारें म्यान से खींच ली। उस समय निज़ाम ने अट्टाहास करते हुए बाजीराव से कहा —" बाजीराव ! इस समय आप हमारे बन्दी हैं। यदि सैनिकों द्वारा आपका बध हो जाय तो इस समय आपकी सहायता कौन करेगा ?

क्रूर मुगल सैनिकों से, चारो ओर से घिर जाने पर भी पेशवा ने साहस का त्याग नहीं किया। उन्होंने एकबार अपने चारो ओर के सैनिकों पर दृष्टि डाली, और तुरन्त ही म्यान से भवानी तलवार खींचते हुए सिंह की भाँति गर्जकर बोले—" जब तक हमारे हाथ में तलवार है तब तक इतने ही क्या, लाखों सैनिकों से अवरुद्ध होने पर भी पेशवा किंचित मात्र धैर्य नहीं छोड़ सकता। इन अल्प सैनिकों से अपनी आत्मरक्षा करने में मैं सर्वथा समर्थ हूँ। परन्तु आप जैसा वीर पुरुष विश्वासघात करेगा, यह सब नेत्रों से देखने पर भी विश्वास नहीं होता। यदि सत्यतः आपके द्वारा ऐसा निन्दनीय कार्य हो तो याद रखिये मेरे दाहिने हाथ वीर होलकर और वीर सेंधिया निकट ही उपस्थित रहेंगे।

ज्योंही वीर बाजीराव के मुख से अन्तिम वाक्य निकले त्योंही भृत्य वेषधारी मल्हारराव होलकर और वीरवर राणोजी सेंधिया अपने मुख पर से नकली दाढ़ी मूँछ हटाकर तुरन्त म्यान से तलवार निकाल निजामुल्मुल्क के सम्मुख जा उपस्थित हुए। उस समय उनका चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था।

निजामुल्मुल्क वीर बाजीराव पेशवा का असाधारण साहस और उनके परम प्रिय सेनापति होलकर और सेंधिया का निर्भीक भाव से अपने सन्मुख खड़ा होना देखकर पाषाणवत् एकटक उन्हें देखने लगा। उसकी यह अवस्था कुछ क्षण तक वैसी ही बनी रही। इसके बाद वह सहसा बोल उठा—"सचमुच बाजीराव ! आप वीर पुरुष हैं। मैंने आजतक आपके सदृश असाधारण वीर योद्धा नहीं देखा था। वीर होलकर और सेंधिया जैसे निर्भीक योद्धा आप जैसे भाग्यशाली को ही प्राप्त हो सकते हैं। केवल आपके साहस की परीक्षा करने के लिये ही मैंने इतना व्यूह रचा था।

निजाम ने उस समय तो पेशवा की प्रशंसा करते हुए आदर सत्कार किया। परन्तु उसी समय से बाजीराव के प्रति उसके हृदय में प्रतिहिंसा की मनोभावना और भी दृढ़ हो गई और वह प्रतिशोध लेने के लिये गुप्तरूप से किसी नवीन उपाय का अनुसन्धान करने लगा, जो क्रमशः पाठकों को आगे अवगत हो जायगा।

इसप्रकार अपने अमोघ विक्रम द्वारा कट्टर शत्रु निजामुल्मुल्क को परास्त कर और पाल पोखड़ का युद्ध समाप्त कर वीर पेशवा सन् १७२८ ई० के जुलाई मास में सितारा लौट आये और चार मास (वर्षा काल) तक स्वस्थ चित्त होकर चुपचाप बैठे रहे। इसके उपरान्त उत्तर भारत को आधीन करने के लिये उन्होंने पुनः नवीन उत्साह के साथ विजयादशमी के दिन अपने दल-बल सहित प्रयाण किया।

इसी समय ❀ बुन्देलखण्ड केशरी राजा छत्रसाल ने यवन शत्रुओं के लगातार आक्रमण से पीड़ित होकर अपनी सहायता के लिये वीर पेशवा को निमन्त्रित किया था।

वीर बाजीराव पेशवा तो पहले से ही भारत को यवन जाति के पाश से मुक्त करना चाहते थे। दूसरे की वस्तु पर छल कपट द्वारा अधिकार जमाने वाले इन विदेशियों के हाथ से भारत भूमि का उद्धार करना ही उनके जीवन का प्रधान कार्य था। फिर जब उनको निकटवर्ती मित्र, दुष्ट यवनों द्वारा पीड़ित होकर करुण स्वर में पुकार रहा था तब भला वे उसका करुणोत्पादक आर्तनाद न सुनते, यह असम्भव था। अतः उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक वीर छत्रसाल का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।



❀ बुन्देलखण्ड केशरी वीर छत्रसाल का वृहद्र जीवन चरित्र छंपकर तैयार है। मू० १) रु०

११

वीर छत्रसाल का महम्मद खाँ बंगष से युद्ध, बाजीराव को छत्रसाल का निमन्त्रण, बाजीराव का पराक्रम, मस्तानी, तथा राज्य लाभ।

मध्य प्रदेश के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड प्रदेश महाराज शिवाजी के काल से ही मुगलों के आधीन था। इस प्रदेश के राजा छत्रसाल शिवाजी के आदेशानुसार बुन्देलखण्ड से मुगल साम्राज्य को समूल नष्ट करने का यत्न कर रहे थे। वीर केशरी शिवाजी के युक्तियुक्त उपदेश द्वारा और अपने पराक्रम से

वीर छत्रसाल बुन्देलखण्ड से मुगल साम्राज्य का अस्तित्व मिटाकर हिन्दू राज्य स्थापित करने में सफल भी हुये थे। इस वीर ने मुगलों द्वारा अपना अधिकार अपहृत हो जाने पर भी बुन्देलखण्ड राज्य की आशा सहज ही में नहीं त्यागी थी। मुगल सेना बराबर छत्रसाल की सेना पर आक्रमण एवम् लूट मार करते हुये बुन्देलखण्ड राज्य को हस्तगत करने का प्रयत्न करती रहती थी।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड पर यवनों द्वारा आक्रमण हो ही रहा था कि, इतने में सन् १७२८ ई० में महम्मद खाँ बंगष नामक एक मुग़ल सर्दार ने इस हिन्दू राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये विशाल सेना लेकर अक्रमण किया। महम्मद खाँ पहले मुग़ल बादशाह द्वारा प्रयाग का सूबेदार नियुक्त किया गया था। इसी महम्मद खाँ ने फ़रुख़ाबाद नगर स्थापित किया था। अस्तु! खाँ साहेब का सामना करने के लिये वीर राजा छत्रसाल बीस हज़ार सेना लेकर खाँ साहेब के साथ युद्ध करने के लिये उसके पहले ही पहुँच गये, परन्तु सफल न हो सके। इस बार वृद्ध राजा छत्रसाल, कट्टर शत्रु महम्मद खाँ का आक्रमण रोकने में कृतकार्य न हो सके। महम्मदी सेना छत्रसाल का व्यूह तोड़कर नगर में घुस गई और मनमाना लूट मार मचाने लगी।

वृद्ध वीर राजा छत्रसाल को जितना बुन्देल खण्ड नाश होने का दुःख नहीं हुआ उससे कहीं अधिक महम्मद खाँ की सहायता कर लूट-पाट में भाग लेने वाले आस-पास के छोटे-मोटे हिंदू राजाओं से हुआ। फिर भी वृद्ध राजा छत्रसाल ने धैर्य नहीं छोड़ा और

महम्मदी सेना से मोर्चा लिया। किन्तु सागर के सदृश महम्मदी सेना के सामने क्षुद्र नदी तुल्य छत्रसाल की सेना कितने समय तक टिक सकती थी। यवनों की ही विजय हुई। अन्त में उन्होंने यवनों के हाथ से बुन्देलखण्ड राज्य की रक्षा का कोई भी उपाय न देख निरुपाय हो, हिन्दुओं के तत्कालीन एकमात्र शुभचिन्तक वीर पेशवा को सहायतार्थ आमन्त्रित किया। उन्होंने बाजीराव पेशवा के सन्निकट एक करुणा जनक पत्र लिखा था। हम अपने पाठकों के विनोदार्थ उसका आशय नीचे उद्धृत कर देते हैं—

"महम्मदखाँ सम्पूर्णरूप से बुन्देलखण्ड राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर रहा है। बुन्देलखण्ड के असंख्य वीर समर में हताहत हो चुके हैं। किसी भी भाँति हिन्दुओं के लज्जा की रक्षा करना हमारा आपका कर्त्तब्य है। इस समय श्रीमान ही हिन्दुओं के एकमात्र बन्धु हैं। आप के अतिरिक्त भारत माता की गोद में दूसरा वीर दृष्टिगोचर नहीं होता। कृपाकर मेरा उद्धार कीजिये। भारत भूमि को दुष्ट यवनों के हाथ से बचाइये। यदि आप ऐसे वीर पुरुष विपत्तिग्रस्त मनुष्य की सहायता कर उद्धार न करेंगे तो निश्चय ही बुन्देलखण्ड राज्य यवनों के अधिकार में चला जायगा। आप से करबद्ध प्रार्थना है कि एक हिन्दू की, नहीं-नहीं, वृद्ध राजा की लाज, बचाकर उपकार के भागी बनें।"

इस प्रकार का करुणा जनक पत्र पढ़कर वीर पेशवा का हृदय दयार्द्र हो उठा और क्रूर मुगलों के हाथ से बुन्देलखण्ड का उद्धार कराने के लिये महाराष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर सेनापति

और सरदारों सहित बीस हजार महाष्ट्रीय सेना लेकर महम्मदखाँ का मान मर्दन करने के लिये चल पड़े।

वीर छत्रसाल ने अपनी शक्ति भर महम्मद खाँ से युद्‍ध किया। परन्तु अन्त में निरुपाय होकर पुत्र तथा आत्मीय बन्धु बान्धवों सहित 'तेजपुर' दुर्ग के निकट खाँ की सेना द्वारा अवरुद्ध हो जाने के कारण उन्होंने उपरोक्त पत्र बाजीराव के सन्निकट भेजा था। बुन्देलखण्ड में प्रवेश करते ही बाजीराव इस 'तेजपुर' दुर्ग के समीप जा उपस्थित हुए और अपनी समग्र सेना को कई भागों में विभक्त कर उनमें से एक दलके सेनापति को मोहम्मद खाँ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। महम्मद खाँ इस पेशवा दल को युद्ध में परास्त कर पेशवा की ओर अग्रसर हुआ। चतुर चक्र-चूड़ामणि बाजीराव पेशवा यही तो चाहते थे। उपर्युक्त अवसर अवलोकन कर उन्होंने समस्त महाराष्ट्रीय सेना को एक साथ ही आक्रमण करने की आज्ञा दी। फिर क्या पूछना था, महाराष्ट्र वीर बाज की भाँति शत्रुदल पर टूट पड़े और अपने भयङ्कर तलवारों तथा भालों के तीक्ष्ण वार से यमपुर पहुँचाने लगे। यह युद्ध सन् १७२९ ई० के १२ मार्च को हुआ था।

इस प्रकार कई सहस्र वीरों की आहुति के पश्चात् महम्मदखाँने सायंकाल को विश्राम करने का संकेत बाजीराव को किया। बाजीराव ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और युद्ध बन्द कर दिया। तीन दिन तक अपने सर्दारों के साथ युद्धादि विषय पर विचार करता रहा। अन्त में १५ मार्च को उसने पुनः महाष्ट्रीय सेना

ने एक नवीन युक्ति से शत्रु पक्ष को ध्वंस करने का विचार किया। महम्मदी सेना का आक्रमण होने पर वीर पेशवा ने शत्रु का संहार करते हुए क्रमशः पीछे हटकर ससैन्य एक पार्वतीय स्थान में सम्पूर्ण दिवस व्यतीत किया और सन्ध्या के समय अन्धकार विद्युत वेग से महम्मदी सेना पर आक्रमण कर दिया। इधर खाँ साहब की सेना भी युद्ध करने को तैयार ही थी। ज्योंही महाराष्ट्र वीर पार्वतीय स्थान से आगे बढ़े त्योंही शत्रु पक्षकी तोपों से प्रचण्ड अग्नि के गोले बरसने लगे। अपनी अधिक सेना नष्ट न होने पावे इसलिए वीर पेशवा ने थोड़ी सेना लेकर शत्रु पक्षके अग्नि उगलने वाली तोपों का सामना किया और अपने बुद्धि चातुर्य द्वारा शत्रु पक्ष को भ्रमजाल में फँसाकर खूब छकाया॥ ।

निशा की भयङ्कर अँधियारी होने पर भी वीर पेशवा की असाधारण निपुणता के कारण उस युद्ध में अधिक महाराष्ट्र वीर हताहत नहीं हो पाये। अलबत्ता महम्मद खाँ ने आशातीत चेष्टा करने पर

॥इस युद्ध में महम्मद खाँ बंगष की विशेष हानि हुई थी। चतुर बाजीराव ने दस दस पन्द्रह पन्द्रह महाराष्ट्र वीरों की एक एक टोली बनाकर उन्हें चारों तरफ घूम घूम कर मशाल जलाने की आज्ञा दी थी। चतुर महाराष्ट्र एक स्थान पर कुछ देर प्रकाश कर मशाला बुझा देते थे। और झट पट दूसरे स्थान पर चले जाते थे। इसप्रकार सम्पूर्ण रात्रि इसी तरह कार्य-क्रम चालू रहा और उन्हें खूब परीशान किया।

और अपने कई रण कुशल वीरों को खोने के पश्चात् पेशवा के कई एक घोड़े खच्चड़ प्राप्त किये थे।

दूसरे दिन पुनः दोनों दल में घोर युद्ध होने लगा। बाजीराव ने शत्रु को विध्वंस करने के लिये आज एक अन्य ही उपाय का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने गुप्तरूप से एक सेनापति को, जहाँ से मुगलों की सेना के लिये रसद, पानी, गोला, अस्त्र, शस्त्र आदि जितनी भी युद्धोपयोगी सामग्रियाँ आती थीं, उस मार्ग को अपने आधीन कर लेने की कड़ी आज्ञा दी और स्वयम् शत्रु के सम्मुख डटे रहे।

धीरे-धीरे भगवान अंशुमाली ने भी अपना रथ अस्ताचल की ओर बढ़ाया। थोड़ी देर में घोर अन्धकार का साम्राज्य फैल गया। अतः इस उपयुक्त अवसर पर वीर पेशवा ने महाराष्ट्रीय दल को तीन भागों में विभक्त कर तीन तरफ से ससैन्य खाँ साहेब को घेर लेने के लिये भेजा। महाराष्ट्रों ने बड़ी वीरता तथा सतर्कता के साथ महम्मद खाँ को सेना सहित अवरुद्ध कर लिया। इसके पूर्व ही बाजीराव की विलक्षण बुद्धि द्वारा बेचारे खाँ बहादुर को अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य द्रव्य मिलना कठिन हो गया था। अवशिष्ट अन्न तथा गन्दे नालों के जल से खाँ साहेब ने कई दिन व्यतीत किये। परन्तु अवशिष्ट वस्तुएँ कितने दिन तक स्थिर रह सकती हैं? धीरे-धीरे उनकी सेना में हाहाकार मच गया। बड़ी कठिनता से १५) रु० सेर अन्न मिले। परन्तु महम्मद खाँ को धन की क्या कमी थी। बुन्देलखण्ड के राजा

का लूटा हुआ धन तो उसके खजाने में भरा था। अतः मदमत्त खाँ ने पराजय स्वीकार न कर इसी दशा में दो मास व्यतीत कर दिये। परन्तु इन दो महीनों में महम्मद खाँ को अपने अव्यर्थ अहङ्कार का बड़ा दारुण कष्ट भोगना पड़ा। क्योंकि प्रति दिन उनके क्षुधा पीड़ित सर्दार और सैनिक गण महाराष्ट्रों के चमचमाते हुए भालों द्वारा बिहिश्त में पहुँचाये जाते थे। फिर भी महम्मद खाँ समर भूमि से न भागा और यदि भाग भी जाता तो किधर? बेचारा चारों तरफ से शत्रु सेना द्वारा अवरुद्ध था। अस्तु, जिस प्रकार शिकारी के जाल में फँसा हुआ शिकार नाना उपायों द्वारा अपने मुक्त होने का प्रयत्न करता है उसी तरह महम्मद खां ने भी मुक्त होने के लिये कोई कसर नहीं उठा रखी थी। परन्तु चतुर पेशवा के अपूर्व नीति-जाल से लाखों उपाय करने पर भी वह मुक्त न हो सका। इसी बीच उसका पुत्र 'कायम खाँ' तीस हजार सेना लेकर पिता को मुक्त करने के लिये तेजपुर दुर्ग के निकट आ उपस्थित हुआ।

वीर पेशवा ने कायम खाँ को नवीन सेना के साथ आने का समाचार सुन तुरन्त उसपर आक्रमण करने की आज्ञा दी और सन् १७२९ ई० की २९ अप्रैल को तेजपुर दुर्ग से बारह मील की दूरी पर दोनों पक्षों का विकट युद्ध हुआ। भूखे सिंह की भाँति महाराष्ट्र वीरों ने तीव्र बेग से अपनी तीक्ष्ण तलवारों द्वारा शत्रु पक्ष को धराशायी करना आरम्भ कर दिया। महाराष्ट्रों के 'हर हर महादेव' का गगन भेदी नाद एवम् प्रचण्ड भालों की मार

ने शत्रु को तहस-नहस कर डाला। पेशवा की भवानी तलवार के सम्मुख कायम खाँ के वीर सर्दार सेनापतिगण समरभूमि में टिक न सके।

इसप्रकार दक्षिणी वीरों द्वारा पराजित कायम खाँ अपना प्राण बचाकर समर भूमि से भाग खड़ा हुआ। उसके भागते ही सैनिकगण भी रणभूमि परित्याग कर तेजी के साथ जिसे जो मार्ग दिखलायी पड़ा वह उधर ही भागने लगा। शत्रु को भागते देख महाराष्ट्र वीरों ने उनका पीछा किया। शत्रुओं का कुछ दूर तक पीछा कर महाष्ट्रीय वीर समर भूमि में लौट आये परन्तु वहाँ पर शत्रुपक्ष का एक भी सैनिक दृष्टिगोचर नहीं होता था। हाँ, मृतकों और घायलों से रण भूमि खचाखच भरी थी। इस युद्ध में शत्रुपक्ष के तेरह सौ रण दिग्गज साड़ और ऊँट, तीन हजार घोड़े और कई सौ बन्दूकें पेशवा के हाथ लगीं थीं। अस्त्र शस्त्रों की संख्या तो अगणित थी। महम्मद खाँ और उसका पुत्र पराजित हुआ।

वृद्ध राजा छत्रसाल वीर पेशवा के पराक्रम द्वारा शत्रु का दम टूटते देख अपने बुन्देले वीरों को साथ लेकर क्षुधा पीड़ित केशरी की भाँति महम्मद खाँ के ऊपर टूट पड़े। अपमानित और पराजित महम्मद खां तथा उसके वीर सैनिकगण उस भयङ्कर आक्रमण को सहन न कर सके। थोड़े समय में ही समर भूमि यवनों की लाश से पट गई। अब महम्मद खाँ बचे हुए सैनिकों को लेकर भागने ही वाला था कि उसी समय वृद्ध राजा छत्र-

साल ने उन्हें युद्ध के लिये ललकारा। परन्तु खाँ बहादुर ने अपने सैनिकों के साथ रणभूमि से भागकर तेजपुर दुर्ग में आश्रय लिया।

महम्मद खाँ के अपने दल-बल सहित तेजपुर दुर्ग में प्रवेश करते ही महाराष्ट्रीय सेना ने तेजपुर दुर्ग को भी चारो ओर से घेर लिया। महम्मदी सेना अन्न जल के लिये तड़फने लगी। अस्तु! मांसाहारी यवन, खाद्य पदार्थ न मिलने पर क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित होकर ऊँट, घोड़े आदि मार-मार कर अपना उदर-पोषण करने लगे।

महम्मद खां के अनेक वीर सेनापति उपरोक्त युद्ध में ही समाप्त हो चुके थे। अब बचे खुचे सेनापति तथा सैनिक गणों ने अन्न प्राप्त न होने के कारण यमराज की नगरी का टिकट कटाना आरम्भ कर दिया। इस आकस्मिक विपत्ति से महम्मद खाँ को विशेष दु:ख हुआ। परन्तु खाँ बहादुर ने पराजय स्वीकार नहीं किया। जब पेशवा ने इस संवाद को सुना तो उन्होंने यह मुनादी करवा दी कि "जो अस्त्र-शस्त्र परित्याग कर पेशवा के आश्रय की प्रार्थना करेगा वह मुक्त कर दिया जावेगा।"

वीर पेशवा की इस घोषणा ने महम्मदी सेना में खलबली मचा दी। महम्मद खाँ के आज्ञा न देने पर भी दल के दल यवन सैनिक महाराष्ट्रों के सम्मुख उपस्थित हो आत्मसमर्पण करने लगे। वीर पेशवा ने उनके साथ सद्व्यवहार करते हुए उन्हें मुक्त कर दिया।

महाराष्ट्रीय सेना द्वारा अवरुद्ध हो, अन्न जल के लिये अत्यन्त दुःख भोगते हुए भी तथा बन्धु-बान्धव सुहृद आत्मीय तथा सैनिकों के छोड़ देने पर भी अहंकारी खाँ ने पेशवा का शरणागत होना स्वीकार नहीं किया और अपनी मुक्ति के लिये पुनः अपने पुत्र को एक बार सेना लेकर आक्रमण करने के लिये गुप्तचर द्वारा एक पत्र भेजा। परन्तु उस पत्र का लिखना व्यर्थ हुआ। क्योंकि महाराष्ट्रों के आघात अभी उसके हृदय में ताजे बने हुए थे। अतः उसने माता के अनुरोध से कुछ पठानों के अधिनायकत्व में एक छोटी सी सेना भेज दी जिसके द्वारा वह किले से भाग निकलने में समर्थ हुआ—

वीर पेशवा ने सम्पूर्ण रूप से महम्मद खाँ बंगष को परास्त कर बुन्देलखण्ड राज्य को यवनों के अत्याचार से बचाया। इस युद्ध में उनको अनेक समर यातनायें भी भोगनी पड़ी थीं। परन्तु वीर बाजीराव ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उनका एकमात्र ध्येय यही था कि मुगलों को अपने राज्य से ही नहीं, वरन् समस्त भारतवर्ष से निकाल दें। अस्तु सम्पूर्णतः युद्ध समाप्त हो जाने पर पेशवा ने राजा छत्रसाल से भेंट की। वृद्ध वीर राजा छत्रसाल ने पेशवा को आलिंगन किया। उस समय उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। उन्होंने गद्-गद् होकर राजदर्बार में घोषणा की कि वीर बाजीराव पेशवा ने बुन्देलखण्ड राज्य को दुष्ट यवनों के करतलगत से बचाकर मेरा उद्धार किया है। अतः मैं अपने पुत्रों से भी अधिक प्रिय इन्हें अपना तृतीय पुत्र समझता हूँ और उपहार

स्वरूप यमुनातटवर्ती 'झांसी' नामक दुर्ग और उसके आसपास की प्राय: सवा दो लाख रुपये वार्षिक आय की पृथ्वी प्रदान करता हूँ।

इसप्रकार वीर पेशवा कई दिन तक राजा छत्रसाल के अतिथी बने रहे। वृद्ध नरपति ने वीर पेशवा को मणि मुक्तादि केअतिरिक्त मस्तानी नाम की एक नवयोवना 'चन्द्रवदनी' तरुण रमणी को समर्पण किया था। यह तरुण बाला अत्यन्त सुन्दरी थी और छत्रसाल की उपपत्नी की गर्भजात कन्या थी। * चाहे तरुण पेशवा के रूप गुण पर तरुणी के आसक्त हो जाने से अथवा उचित पात्र समझ कर छत्रसाल ने पेशवा को समर्पण किया, यह ठीक २ पता नहीं चलता।

---

* 'राजा छत्रसाल की कोई यवन कुलोत्पन्न सम्भ्रान्त उपपत्नी के गर्भ से 'मस्तानी का जन्म हुआ था। तवारीख "बुन्देलखण्ड" नामक उर्दू इतिहास में यह लिखा है कि, वीर पेशवा की अनिच्छा होने पर भी वह वृद्ध राजा छत्रसाल का अनुरोध टाल न सके और मस्तानी का पाणिग्रहण किया था। परन्तु कुछ काल के उपरान्त वही पेशवा—नृत्य-गान और वाद्य-प्रवीणा विदुषी मस्तानी के नेत्र कटाक्ष से ऐसे मुग्ध हो गये थे कि एक पल के लिये भी उसे आँखों के ओट नहीं होने देते थे। इसके कारण राजकीय कार्य में भी बाधा उपस्थित होने लगी। परन्तु उस समय पेशवा को इसका तनिक भी ख्याल न था। वह हर जगह मस्तानी को साथ लिये रहते थे, इतना ही नहीं वरन् प्रत्येक युद्ध यात्रा भी, मस्तानी के साथ रहे बिना नहीं होती थी। उस रमणी में नृत्य

बाजीराव पेशवा ने अपने प्रिय मदमस्त मस्तानी के निवास के लिये पूना नगर के "शनिवार बाड़ा" में एक स्वतन्त्र और अत्यन्त मनोहर महल बनवा दिया था। महल राजकीय ठाट बाट से परिपूर्ण था। पेशवा ने उस महल के मुख्य द्वार का नाम

गान-विद्या आदि गुणों के साथ साहित्य, राजनीति और युद्ध कौशल आदि के भी गुण विद्यमान थे। इसीलिये वीर पेशवा वीराङ्गणा मस्तानी को युद्धक्षेत्र में भी सदा अपने निकट रखते थे और तरुण मस्तानी भी उनकी आज्ञा का सर्वदा पालन करती थी। परन्तु पेशवा का ऐसा व्यवहार महाराज शाहू को अच्छा न लगा। सर्व प्रथम उन्होंने अनेक बार बाजीराव को समझाया परन्तु उसका विपरीत फल देखकर अन्त में उन्हें पदच्युत करने का भय दिखाया। परन्तु पेशवा ने इसकी ओर भी दृष्टिपात नहीं किया। वह प्रधान पद को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। अन्त में जब उनके कनिष्ट भ्राता चिमणाजी ने देखा कि किसी भी भाँति बाजीराव का मन विचलित नहीं होता तो उन्होंने एक नवीन युक्ति का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने पेशवा के इस कार्य से अत्यन्त विरक्त होकर शीघ्र ही सन्यास ग्रहण कर संसार को भी त्याग करने का दृढ़ संकल्प प्रकट किया। तब पेशवा की निद्रा भंग हुई। वह तरुण रमणी के प्रेम को न्यून कर अपने इस अधम कार्य पर पश्चात्ताप करते हुए राजकीय कार्य में लग गये। बाजीराव के इस कार्य से महाराज शाहू अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके प्रिय भ्राता चिमणाजी आप्पा ने सन्यास लेने का संकल्प परित्याग किया।

'मस्तानी दर्वाजा' और महल का नाम 'मस्तानी महल' रखा था। इस प्रकार सतर्कता पूर्वक राजकीय कार्य करते हुए वह आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। सन् १७३४ ई० में रमणी रत्न मस्तानी के गर्भ से एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम शमशेर बहादुर रखा गया था। शमशेर बहादुर पेशवा के समय में महाराष्ट्र मण्डल के सर्दार पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। स्वकीय पिता बाजीराव के समान ही उसमें धैर्य, उदारता और राजनीति आदि गुण विद्यमान थे। शमशेर बहादुर के पुत्र 'अली बहादुर' ने पेशवा माधवराव नारायण के समय में चालीस हजार सैन्यदल लेकर बुन्देलखण्ड के गृह-युद्ध करने वाले राजाओं को परास्त कर लगभग ७५ लाख रुपया वार्षिक आय का देश अपने आधीन किया था। इसी अली बहादुर ने पेशवाओं की आज्ञानुसार भारत में अपनी राजधानी निश्चित की थी।

प्रसिद्ध पानीपत के महाभयंकर युद्ध में जब कि महाराष्ट्रीय शक्ति का ह्रास होने लगा था उस समय वीर शमशेर बहादुर ने अपने प्रचण्ड पराक्रम से शत्रु पक्ष के बड़े २ योद्धाओं का मस्तक काटकर समरभूमि को केवल नर-मुण्डों से आच्छादित कर दिया था। उस महाकराल युद्ध में शममेर बहादुर के शरीर में इतने घाव लगे थे कि तिल रखने की भी जगह न थी। अन्त में शमशेर बहादुर ने उन अगणित घावों से पीड़ित होकर समर भूमि में ही अपना प्राण विसर्जन कर दिया। वीर शमशेर बहादूर की मृत्यु सन् १७६१ ई० में हुई थी। शमशेर बहादुर की मृत्यु के पश्चात्

उनके सुयोग्य पुत्र अली बहादुर ने पिता का पद ग्रहण किया। अली बहादुर ने भी अपने जीवन में अनेकों युद्ध किये और अपनी गद्दी मध्य भारत के बाँदा नगर में स्थापित की। अस्तु! अली बहादुर ने पेशवाओं के काल में 'नवाब' की पदवी प्राप्त की थी और आज तक उनके वंशधर 'बाँदा के नवाब' के नाम से प्रसिद्ध हैं।



१२

गुजरात प्रदेश में चौथ विस्तार, सेनापति का विद्वेष, निजामुल्मुल्क की कूटनीति।

महाराज शाहूकी यह उत्कट इच्छा थी कि गुजरात प्रदेश महाराष्ट्रीय साम्राज्य में सम्मिलित हो जाय। उन्होंने अपने इस विचार को पेशवा के सम्मुख प्रकट भी कर दिया था। जिस समय वीर बाजीराव और निज़ाम बहादुर का प्रथम युद्ध हुआ था, उस समय बाजीराव ने गुजरात पर भी आक्रमण किया

था, परन्तु पूर्णतया सफल नहीं हो सके। अतः १७२९ ई० में इन्होंने अपने बन्धु चिमणाजी अप्पा को साथ लेकर ससैन्य गुजरात की ओर प्रयाण किया। पहले इन्होंने गुजरात के सूबेदार सर बुलन्द खाँ को यह सूचित किया कि, यदि वह गुजरात के समस्त सर्दारों सहित महाराष्ट्रपति की आधीनता स्वीकार करते हुए समस्त प्रदेश का चौथ और सरदेश मुखी का स्वत्व महाराष्ट्रों को प्रदान कर प्रमाण पत्र लिख देंगे तो महाराष्ट्रपति गुजरात प्रदेश की शान्ति रक्षा का भार उठाने के लिये तैयार हैं।"

इस प्रकार सर बुलन्द खाँ के सन्निकट उपरोक्त पत्र प्रेषित करने के पूर्व ही वीर बाजीराव ने त्र्यम्बकराव दावाड़े, पीलाजी गायकवाड़ और कण्ठाजी कदम आदि प्रचण्ड सेनापतियों को गुजरात विजय करने की आज्ञा दे दी थी। पहले तो सर बुलन्द खाँ ने इन सेनापतियों के आक्रमण से बचने का आशातीत उद्योग किया। परन्तु सब प्रयत्न निष्फल होने पर उसने दिल्ली के बादशाह से सेना दल भेजने की प्रार्थना की।

उस समय दिल्लीश्वर युद्धादि के झंझटों से दूर रहकर अपने शाही महल में कामिनियों के सौन्दर्य का उपासक बना हुआ था। गुजरात पर महाराष्ट्रीय सेना का प्रचण्ड आक्रमण होने पर भी उसने इस ओर लेश मात्र भी ध्यान नहीं दिया। सुख सौन्दर्य का परित्याग कर, कठिन राजकीय युद्धादि का प्रबन्ध करना दिल्लीश्वर के लिये असम्भव था। अतः बुलन्द खाँ को

दिल्लीश्वर से सेना की सहायता नहीं मिली। अन्त में खाँ बहादुर को विवश होकर महाराष्ट्रों से सन्धि करने और महाराज शाहू को चौथ प्रदान करने के लिये उद्यत होना पड़ा था। जिस समय बुलन्द खाँ महाराष्ट्रपति को चौथ आदि कर देने को तैयार था उस समय महाराष्ट्रीय सेना के सेनापति कण्ठाजी कदम और पीलाजी गायकवाड़ आदि महाराष्ट्र वीर खाँ बहादुर की सन्धि का कुछ विचार न कर समग्र गुजरात देश को लूट-पाट कर नष्ट भ्रष्ट करने लगे। उनके लूटपाट के कारण समस्त प्रदेश में हाहाकार मच गया। अपने ही मनुष्यों द्वारा बेचारे गुजरात निवासियों की दुर्दशा देखकर वीर पेशवा अत्यन्त दुःखित हुए और उन्होंने बुलन्द खाँ के निकट सन्धि पत्र उपस्थित किया। खाँ बहादुर उस सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करने को सहमत हो गया। उस सन्धि पत्र में नीचे लिखी शर्तें थीं:—

१—समस्त गुजरात का चौथ और सरदेश मुखी का स्वत्व महाराष्ट्रपति को अर्पण करना होगा। इसमें कभी भी सूबेदार बुलन्द खाँ को हस्तक्षेप नहीं करना होगा।

२—इसके पुरष्कार स्वरूप गुजरात निवासियों को चोर ठग आदि उपद्रवियों से रक्षा करने के लिये महाराज शाहू २५ सौ सेना का एक समूह उक्त प्रदेश में रखेंगे जो समय पर सूबेदार साहब की भी सहायता करेगा।

३—गुजरात के विद्रोही जागीरदारों की, कोई भी महाराष्ट्र वीर, किसी भी प्रकार की, सहायता नहीं करेगा और उक्त प्रदेश

के जमींदार किसी भी प्रकार का उपद्रव करेंगे तो इसके उत्तरदायी सूबेदार साहब समझे जायँगे।

इसप्रकार उपरोक्त सन्धिपत्र पर सूबेदार साहब ने सहर्ष हस्ताक्षर कर दिये। इसके पश्चात् वीर पेशवा ने सैन्यदल के प्रधान सेनानी त्र्यम्बकराव दावाड़े को 'मोपासा' और सरदेश मुखी के स्वत्व का कुछ अंश प्रदान किया। परन्तु सेनापति त्र्यम्बक राव दावाड़े और उनके मित्र कण्ठाजी कदम और अन्य सहकारी लोग इतनी थोड़ी रकम से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने विशेष धन प्राप्त करने के लिये गुजरात के धनिकों को लूटना आरम्भ कर दिया। फिर क्या था, देखा देखी और लोगों ने भी लूट का मार्ग अवलम्बन कर लिया।

पेशवा की असाधारण बुद्धि तथा विशेष मान सम्मान अवलोकन कर उपरोक्त सेनापतिगण उनसे जलने लगे थे और उनके विशेष जलने का कारण यह भी था कि पेशवा ने उन लोगों की अनुमति इस सन्धि के विषय में नहीं ली थी। अतः सेनापति और उनके सहकारी लोग अपना विशेष अपमान समझ कर विद्रोही बन बैठे।

निज़ामुलमुल्क इसके पहले कई बार वीर पेशवा द्वारा युद्ध में हारकर सन्धि बन्धन में बँध चुके थे। परन्तु उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ था। वह अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये सुअवसर का अनुसन्धान कर रहे थे। खाँ बहादुर ने प्रकटरूप में तो सन्धि बन्धन में अवरुद्ध रहकर बाजीराव

का पक्ष अवलम्बन किया था, परन्तु गुप्तरूप से वह पेशवा के प्रतिद्वन्दीगणों की सहायता करना चाहता था। अतः जिस समय सेनापति और सरदारों के असन्तोष होने का सम्वाद उन्होंने सुना उस समय उपर्युक्त अवसर को भला वह कब हाथ से जाने देता? उसने पेशवा के प्रतिद्वन्दी त्र्यम्बक राव दावाड़े को अपनी ओर मिलाकर धन द्रव्य, अस्त्र शस्त्र तथा सैन्य बल द्वारा हर प्रकार से सहायता करने का वचन दिया। फिर क्या था, 'दावाड़े' महाशय एक सम्पन्न व्यक्ति को अपना पृष्ठपोषक देख फूलकर कुप्पा हो गये और पेशवा बाजीराव से घोर संग्राम करने के हेतु रणक्षेत्र में सामना करने के लिये तैयार हो गया।

इस प्रकार निजाम ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति की सहायता प्राप्त-कर सेनापति त्र्यम्बकराव दावाड़े ३५ हजार सेना लेकर गुजरात से वीर पेशवा को मार भगाने के लिये पूना नगर की ओर चल पड़े। प्रयाण करने के पूर्व ही उन्होंने इस समाचार का ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि—"बाजीराव महाराज शाहू से विशेष मान सम्मान प्राप्तकर अभिमानी हो गये हैं। वह अपने शौर्य द्वारा महाराष्ट्र-पति की राज सत्ता नष्टकर स्वयम् राजसिंहासन हस्तगत करना चाहते हैं। इस समय समस्त राजकीय कागज पत्र तथा सैन्यबल पेशवा के हाथ में रहने के कारण सरलतया वह राज्य सिंहासन प्राप्त कर सकते हैं। सिंहासनारूढ़ होने पर फिर उन्हें किसी भी भांत हटाना असम्भव है। अतः महाराज शाहू को महाराष्ट्रपति बनायें रखने और बाजीराव का अहंकार चूर्ण करने के लिये,

त्र्यम्बकराव दाबाड़े उनसे युद्ध करेंगे। बाजीराव के इस कार्य से अत्यन्त दु:खित होकर कई एक महाराष्ट्र सेनापति सरदार त्र्यम्बकराव दाबाड़े की सहायता करने को प्रस्तुत हुए हैं। अतः समस्त महाराष्ट्र राज्य के हितैषियों से यह प्रार्थना है कि इस पुण्य कार्य में उनकी सहायता कर महाराष्ट्रपति की राजसत्ता नष्ट न होने दें।"

इसप्रकार त्र्यम्बकराव की उपरोक्त घोषणा चारो ओर फैल जाने पर जो लोग चिरकाल से वीर पेशवा के आश्रित तथा अनुयायी थे, उन लोगों में से भी कितनों ने हो बाजीराव का उपकार भूलकर उनका सर्वनाश करने के लिये सेनापति त्र्यम्बकराव का पक्ष ग्रहण कर लिया।

सेनापति त्र्यम्बकराव की घोषित की हुई विश्वास घातक विज्ञप्ति जब वीर पेशवा को अवगत हुआ तो वह तनिक भी विचलित नहीं हुए। वरन वीर की भांति त्र्यम्बकराव के इस भीषण अपवाद के प्रसारित करने के हेतु यथोचित दण्ड देने के लिये सेना एकत्रित करने लगे। परन्तु जब उन्होंने यह सुना कि निजाम के उसकाने से यह आपस का गृह कलह उत्पन्न हुआ है और त्र्यम्बकराव की सहायता के लिये स्वयम् निजामुल्मुल्क सेना सहित आ रहा है तो उनके क्रोध का पारावार न रहा। तत्क्षण बाजीराव एकत्रित की हुई सेना को लेकर सेनापति तथा उनके सहकारियों का दमन करने के निमित्त अग्रसर हुए। मार्ग में चारो ओर उन्होंने भी जो घोषणा की थी वह इस प्रकार है:—

"सेनापति त्र्यम्बकराव का घोषित किया हुआ समाचार कपट-

पूर्ण। निज़ामुल्मुल्क कई वार महाराष्ट्र वीरों से पराजित हो चुके हैं। अतः महाराष्ट्रीय शक्ति के सम्मुख अपनी दाल गलती न देखकर वह एक नूतन युक्ति द्वारा महाराष्ट्रीय शक्ति को नष्ट भ्रष्ट करने के विचार से त्र्यम्बकराव को अपने पक्ष में मिला-कर महाराष्ट्र राज्य में कलहरूपी अग्नि घर घर प्रज्वलित करना चाहते हैं। त्र्यम्बकराव ने हिन्दू होकर भी एक यवन के परामर्श से अपने जातीय भाइयों का रक्त बहाने का मार्ग अवलम्बन किया है। उनका यह निन्दनीय कार्य हिन्दू धर्म के विरुद्ध है। अतः जो लोग महाराष्ट्र साम्राज्य चिरस्थायी रखना चाहते हैं, जिन्हें मातृभूमि प्यारी है, जो अपने को सच्चे महाराष्ट्र वीर समझते हैं, उन वीरों का कर्त्तव्य है कि राजद्रोही सेनापति त्र्यम्ब-कराव तथा उनके सहकारियों का गर्व खर्व करने के लिये बिना विलम्ब अस्त्र-शस्त्र धारणकर महाराष्ट्रपति के सैन्य दल में सम्मिलित हों।

इसप्रकार वीर पेशवा की घोषणा सुनते ही सामान्य नदी तुल्य महाराष्ट्रीय सेना, अश्व तथा योद्धाओं से सुसज्जित हो महासागर के सदृश्य दृष्टिगोचर होने लगी। परन्तु यह नवीन सेना के वीर योद्धा बेतनभोगी न थे, वे निःस्वार्थभाव से मातृभूमि की मंगलकामना से प्रेरित हो महाराष्ट्रपति का साम्राज्य कायम रखने के लिये, राजद्रोहियों का मद मर्दन करने के लिये अपने प्रिय प्राणों की ममता छोड़कर पेशवा की रण पताका के नीचे उपस्थित हुए थे। इतना ही नहीं वरन् जिन सरदारों ने ससैन्य

सेनापति त्र्यम्बकराव का पक्ष ग्रहण किया था वह स्वजातीय हित के लिये बाजीराव के सैन्य दल में आ मिले।

सेना विभाग की शक्ति ठीक-ठीक हो जाने पर बाजीराव ने इस आकस्मिक विपद् की सूचना पत्र द्वारा महाराष्ट्रपति के पास भेजा। परन्तु दुर्बल हृदय महाराज शाहू ने त्र्यम्बकराव दावाड़े जैसे दुर्जय वीर को दमन करने के लिये मना किया और सन्धि कर लेने की आज्ञा दी। परन्तु बाजीराव ने उनकी आज्ञा पर ध्यान नहीं दिया। सन् १७३० ई० के सितम्बर मास में वह अपने कनिष्ठ भ्राता चिमणाजी आप्पा के साथ दल बल सहित, सेनापति त्र्यम्बकराव और उनके सहायक निज़ामुल्मुक को परास्त करने के लिये रवाना हो गये।

चतुर राजनीतिज्ञ बाजीराव ने राज्य को गृह-युद्ध से वंचित रखने के विचार से गुजरात पहुँचने के पूर्व सेनापति त्र्यम्बकराव के पास सन्धि का प्रस्ताव पेश किया था। उन्हें जातीय वैमनस्य से हार्दिक घृणा थी। इसलिये वह यह सन्धि करना चाहते थे। परन्तु मदोन्मत्त त्र्यम्बकराव ने इसका उल्टा ही अर्थ समझा। वह पेशवा को भयभीत हुआ समझकर उनपर एक बारगी आक्रमण कर बैठे। वीर पेशवा नर्मदा नदी पार करने भी न पाये थे कि उनके अग्रगामी सरदार पीलाजी के पुत्र को दामाजी गायकवाड़ ने सहसा आक्रमण कर घायल कर दिया।

इस प्रकार विश्वासघात द्वारा त्र्यम्बकराव का आक्रमण सुनकर बाजीराव क्षुधित केशरी की भाँति क्रोधित हो निज़ामी

सेना को गुजरात प्रदेश में पराजित करने के हेतु पूर्णरूप से तत्पर रहे।

निज़ामुल्मुल्क (नवाब हैदराबाद) कई युद्धों में वीर पेशवा द्वारा परास्त हो चुका था। अतः उसने इस अवसर पर बाजीराव के सम्मुख प्रकाश्यभाव से युद्ध कर अपनी पूर्व सन्धि को नष्ट करना नहीं चाहा। परस्पर की फूट का अन्तिम परिणाम मुझे ही मिलेगा इसे वह अच्छी तरह जानता था। इसी लिये वह बगुला भगत बनकर अवसर की ताक में बैठा रहा।



१३

वीर बाजीराव द्वारा त्र्यम्बकराव का पराजय, त्र्यम्बकराव की मृत्यु, उनके पुत्र यशवन्तराव के साथ मित्रता, निज़ाम के साथ सन्धि।

वीर बाजीराव पेशवा अपनी सेना के साथ बड़ौदा और दभई नामक नगरी के मध्य में जा पहुँचे। उनके विरुद्ध पक्ष में सेनापति त्र्यम्बकराव, पीलाजी, दामाजी गायकवाड़, कण्ठाजी कदम तथा निज़ामुलमुल्क (नवाब हैदराबाद) अपनी-अपनी सेना लेकर प्रस्तुत थे, किन्तु वीरवर बाजीराव उस

सेना समुद्र को देखकर तनिक भी न घबड़ाये और शान्त होकर टक्कर लेने पर तत्पर रहे।

सन् १७३१ ई० को उक्त स्वजातीय बन्धुओं का घोर संग्राम आरम्भ हुआ। दोनो पक्ष के तोपों की गड़गड़ाहट, गोलियों की सनसनाहट एवम् तलवारों की झनझनाहट से दिग् दिगन्त गूँज उठा। महाराष्ट्र सेना निःस्वार्थ भाव से देश के कल्याणार्थ अपने प्राण विसर्जन करने को कटिबद्ध थी। किन्तु शत्रु पक्ष?—वह केवल स्वामी की आज्ञा से, भयभीत होकर, द्रव्य के लालच से युद्ध कर रहा था। वीर पेशवा बार-बार अपने वीरों को प्रोत्साहित करते हुए चतुर्दिक् घूम-घूम कर शत्रुदल को साफ करते जाते थे। थोड़े ही काल में उनके प्रबल प्रताप को देखकर शत्रु सेना भाग खड़ी हुई। अपनी बिशाल सेना को अधिकांश मृतक देखकर त्र्यम्बकराव क्रोध से बावले हो गये और एक मस्त हाथी पर आरूढ़ होकर प्रचण्ड वेग से आगे बढ़ते हुए पेशवा की सेना पर तीरों की बौछार करने लगे। कहा जाता है कि त्र्यम्बकराव की बाण बृष्टि ने अधिकांश महाराष्ट्र वीरों को रण-भूमि में सुला दिया था। अस्तु! हिन्दुओं द्वारा ही हिन्दुओं को नष्ट होते देख पेशवा अत्यन्त दुःखित हुए। उन्होंने इस जातीय विग्रह को शान्त करने के उद्देश्य से त्र्यम्बकराव के पास यह सन्देश भेजा कि—शत्रुपक्ष अवलम्बन कर अपने स्वजातीय बन्धु बान्धवों पर इसप्रकार का शौर्य और युद्ध कौशल दिखाना आप जैसे विचारवान् राजनीतिज्ञ को उचित नहीं

प्रतीत होता। एक हिन्दू को अपने ही कट्टर शत्रु-यवनों के पक्ष में सम्मिलित होकर हिन्दुओं पर बल प्रयोग करना नितान्त भूल है। अच्छा होता, यदि आप स्वजातीय पक्ष अवलम्बन कर शत्रुओं का मान मर्दन करते। आपको सोचना चाहिये कि परस्पर के गृह-कलह से तीसरे का भला होता है।

बाजीराव का उक्त सन्देश निरर्थक ही हुआ। त्र्यम्बकराव ने उसकी उपेक्षा कर अपनी सेना को पेशवा के सैन्यदल पर और भी तीव्र वेग से आक्रमण करने की आज्ञा दी। वीरवर पेशवा को भयङ्कर मानसिक सन्ताप हुआ। उन्होंने अपनी सेना को युद्ध स्थायी रखने की आज्ञा दे दी।

वीर बाजीराव की सेना सिंह की भाँति शत्रु पक्ष पर टूट पड़ी। फिर क्या था! दोनों पक्ष का विकट युद्ध आरम्भ हो गया। उस घोर घमासान युद्ध में महाराष्ट्र वीरों को बाजीराव की (सेनापति के प्राण न लेने की) आज्ञा का स्मरण न रहा। अतः एक महाराष्ट्र नवयुवक सैनिक ने जोश में आकर सेनापति त्र्यम्बकराव को अपनी बन्दूक का ऐसा निशाना बनाया कि, महा-अहंकारी त्र्यम्बकराव हाथी के हौदे में ही ढेर हो गये। सैनिकगण अपने सेना नायक को मरते देख इधर उधर भागने लगे। आहत पीलाजी गायकवाड़ ने भी शत्रुपक्ष से मुँह मोड़कर एक ओर का रास्ता लिया। इस महायुद्ध में वीर पेशवा के साथ उनके प्रिय सेनापति मल्हारराव होलकर और राणोजी सेन्धिया ने गायकवाड़ के दोनो पुत्रों के साथ-साथ असंख्य शत्रु-

सैन्य का संहार किया था। पीलाजी गायकवाड़ ने शत्रुपक्ष अवलम्बन कर व्यर्थ ही अपने दोनों वीर पुत्रों को समराङ्गण की बलि वेदी पर सुलाया।

पराक्रमी सेन्धिया और वीर राणोजी होलकर की सहायता से वीर बाजीराव पेशवा ने मुट्ठी भर महाराष्ट्र योद्धाओं की सहायता से सागरवत् शत्रु सेना को परास्त कर विजय की पताका फहराते हुए सितारा में प्रवेश किया। उनके आगमन के पूर्व ही प्रतिनिधि श्रीपतिराव ने बाजीराव के विरुद्ध अनेक बातें महाराज शाहू के कानों में भर दी थी। जिस समय बाजीराव शाहू महाराज के निकट पहुँचे, उस समय शाहूजी की भाव भङ्गी एवम् रुखापन देख उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। थोड़े दिनों पश्चात् जब उन्हें श्रीपति-राव का षड्यंत्र ज्ञात हुआ तब उन्होंने सत्यासत्य घटना महाराज शाहू के सामने प्रकाश कर उनके क्रोध को शान्त करने की चेष्टा की। अतः कहना व्यर्थ होगा कि अपनी ही करनी से राजप्रति-निधि महाशय को अपना मस्तक नीचा कर लेने का यह दूसरा अवसर प्राप्त हुआ था। महाराज शाहू ने समस्त सत्य घटना को सुनकर मृत सेनापति त्र्यम्बकराव के पुत्र यशवन्तराव को सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित कर पेशवा के साथ उनकी मित्रता स्थापित करा दी और भविष्य में कभी भी यशवन्तराव और पेशवा में किसी प्रकार का वैमनस्य उत्पन्न न हो, इसलिये उक्त दोनों वीरों से प्रतिज्ञा—पत्र लिखवाकर गुजरात प्रदेश की शासन डोर सेना-पति को अर्पित कर दी। मालवा में पेशवा की ही प्रधानता थी।

परन्तु बाजीराव को गुजरातका आधा कर यशवन्त राव को देना होगा, साथ ही साथ सर बुलन्द खां तथा अन्यान्य परगनों से वसूल की हुई मालगुजारी स्वयम् महाराष्ट्रपति के स्वाधीन करनी होगी, * यह शर्त निर्धारित कर दी।

इस प्रकार दोनों वीरों को सन्धि सूत्र में बांधकर महाराज शाहू ने गृहाग्नि को शान्त किया था। इस कार्य के साथ ही साथ महाराज शाहू ने एक और गृहकलह रूपी अंकुर को नष्ट किया।

---

* जिस समय सेनापति त्र्यम्बकराव की माता "उमाबाई" ने यह समाचार सुना कि उनके पुत्र त्र्यम्बक राव युद्ध में बाजीराव द्वारा परलोक वासी हुए तो वह मारे क्रोधके जल उठी और पुत्र का प्रतिशोध लेने की उसने प्रतिज्ञा की। उसी समय महाराज शाहू ने त्र्यम्बकराव के पुत्र को उनके स्वर्गीय पिता के पदपर प्रतिष्ठित कर बाजीराव से मित्रता करा दी और बाजीराव को 'उमाबाई' के हाथ सौंप दिया तथा उन्हें भी अपना पुत्र समझने की प्रार्थना की। यह महाराष्ट्र महिला साधारण स्त्री न थी। इसने अपनी वृद्धावस्था में भी शत्रुओं को रणाङ्गण में परास्त किया था। एक समय इसने अहमदाबाद के सूबेदार "जोरावर खाँ" से युद्ध किया था। इस युद्ध में इसने स्वयम् सेना नायक का कार्य्य कर शत्रु को शिकस्त दी थी। जोरावर खां की प्रचण्ड सेनाको मुट्ठी भर महाराष्ट्र वीरोंकी सहायता से उमाबाई ने अस्त-व्यस्त कर दिया था। महाराष्ट्रपति ने इस वृद्ध वीरांगना को रत्नजटित सुवर्ण कंकण प्रदान किया था। इसका स्वर्गवास सन् १७४७ ई० में हुआ।

उन्होंने पीलाजी गायकवाड़ के साथ बाजीराव की मित्रता स्थापित करा दी और पुत्र शोकातुर वृद्ध गायकवाड़ को 'सेना खासलेस' की उपाधि प्रदान कर उनका विशेष मान सम्मान किया था। इस भाँति बुद्धि चातुर्य द्वारा आपस का वैमनस्य दूर कर उपरोक्त वीरों को मित्रत्व पाश में आबद्ध करा कर महाराज शाहू ने पुनः पूर्व से भी अधिक योग्यपद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया जिससे परस्पर की फूट नष्ट हो गयी और सब मिलकर राष्ट्र की उन्नति में योग देने लगे।

सेनापति यशवन्त राव के साथ मित्रत्व स्थापित होने पर बाजीराव पेशवा निजाम को परास्त करने के हेतु भीषण तैयारी करने लगे। निजाम यह समाचार सुनकर मारे डर के घबरा उठा। उसे वीर बाजीराव का पराक्रम पूरी तरह अवगत था। अतः वह इस समाचार को सुनते ही बाजीराव से सन्धि करने को प्रस्तुत हो गया। उन्होंने बाजीराव पेशवा के पास जो प्रार्थना पत्र भेजा था, उसका यह आशय था:—

"अब से निज़ामुलमुल्क महाराष्ट्रों के किसी भी कार्य में हस्त-क्षेप न करेंगे। उन्हें पेशवा का आधिपत्य स्वीकार है।"

बाजीराव ने इस प्रस्ताव को पढ़कर उन्हें क्षमा कर दिया। उनसे छुट्टी पाकर पेशवा कुछ दिन तक सितारा में रहकर वहाँ की आभ्यन्तरिक राज्यव्यवस्था सुधारने एवम् आवश्यक नियम बनाने में तल्लीन हो गये। इसके पश्चात् आप मालवा चले गये। वहाँ उनका निज़ाम से साक्षात् हुआ। उस समय उन दोनों में यह

स्थिर हुआ कि, अब से मालवा जाते समय महाराष्ट्रपति की सेना निजाम के अधीनस्थ देशों को किसी प्रकार का त्रास न देगी। परन्तु अपनी प्रतिज्ञा (सन्धि पत्र) के अनुसार निज़ाम महाशय को भी राज्यभर की चौथ और सरदेशमुखी का कर बिना किसी आपत्ति के दे देना होगा। निज़ाम ने पेशवा की यह शर्त स्वीकार कर ली थी।



१४

सिद्धिओं से संग्राम

ई० सन् १७२६ से ही महाराष्ट्रों और जँजीरा के सिद्दिओं में द्वेष फैला हुआ था। अहंकारी सिद्दि लोग जान बूझकर हिन्दुओं से व्यर्थ की छेड़-छाड़ करते थे। बिना कारण उन्हें लूटना, बुरी तरह घायल करना—मारना यह तो अपना दैनिक कार्य सा बना लिया था। वह देवालय और धर्मशालायें आदि नष्ट-भ्रष्ट कर हिन्दुओं को विभिन्न प्रकार से कष्ट देते थे। उनके इस अत्याचार से हिन्दू लोग

घबरा उठे। उन्होंने छत्रपति महाराज शाहू से इन अत्याचारियों के हाथ से मुक्त करने की प्रार्थना की थी। महाराज शाहू ने भी उनको बार-बार की शिकायत से घबड़ाकर ईस्वी सन् १७३० ई० में अपने प्रतिनिधि श्रीपतिराव को ,सिद्दिओं का दमन करने के हेतु भेज दिया। परन्तु दैववशात् श्रीपतिराव उन्हें परास्त न कर सके। उपरोक्त घटना कई बार हो चुकी किन्तु महाराज शाहू की निर्व्बलता के कारण सर्वदा सिद्दियों की ही जीत रही। बार-बार महाराष्ट्रीय सेना को हराने से सिद्दिओं का घमण्ड और भी बढ़ गया। वह हिन्दुओं को बल पूर्वक 'इस्लाम' धर्म में दीक्षित करने लगे। जंजीरा की दीन-हीन हिन्दू दर-दर के भिखारी बन गये। अच्छी-अच्छी कुल-कामिनियों का घर से निकलना बन्द होगया।

धीरे-धीरे ई० स० १७३३ में यह समाचार वीरवर बाजीराव को मिला। वह मालवा से लौटकर सिद्दिओं को दण्ड देने के लिये जंजीरा की ओर बढ़े। उस समय उन्होंने अपने सहायक सेंधिया और होलकर को मालवा प्रदेश की निगरानी के लिये छोड़ दिया था। जब सिद्दियों ने बाजीराव का आगमन सुना तब वह भी युद्ध के लिये प्रस्तुत होगये। परन्तु वीर पेशवा के प्रचण्ड पराक्रम के सम्मुख उनकी दाल न गली। वीर महाराष्ट्रों ने उन्हें चुन-चुन कर मृत्युलोक पहुँचा दिया। बचे खुचे सिद्दी जर्जर होकर भाग खड़े हुए।

इस विजय से जंजीरा के ११ परगनों की आमदनी का आधा

भाग महाराज शाहू को प्राप्त हुआ। छत्रपति महाराज शिवाजी की राजधानी 'रायगढ़ और चार अटूट दुर्ग' महाराष्ट्रों के हाथ आये। जंजीरा निवासी अत्याचारों से पुनः एकबार मुक्त हुए।

इस प्रकार वीर बाजीराव पेशवा ने कुछ ही मास में उन दुर्दान्त शत्रु सिद्दिओं को ऐसा दबाया कि फिर न उठ सके। अस्तु, इस प्रकार सिद्दियों को पराजित कर, वीर बाजीराव पेशवा सितारा में वापस आये। महाराष्ट्रपति उनकी इस विजय से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पेशवा को इस कार्य के पुरस्कार स्वरूप 'रायगढ़' दुर्ग और उसके आस-पास के देशों का आधिपत्य प्रदान किया।



१५

मालवा के राजा गिरिधरराय की मृत्यु, मालवा में अराजकता, बाजीराव को निमन्त्रण ।

पेशवा के प्रचण्ड पराक्रम द्वारा जंजीरा में शान्ति स्थापन होने पर जंजीरा के ११ परगनों की आमदनी का आधा हिस्सा महाराष्ट्रपति के हाथ लगा। इस घटना के पूर्व निज़ाम महोदय के साथ महाराज शाहू की जो नवीन सन्धि स्थापित हुई थी उसके कारण दक्षिण भारत में पूर्ण शान्ति स्थापित हो गई थी। इसके पश्चात् बाजीराव ने पुनः मालवा प्रदेश की

ओर दृष्टि फेरी। मालवा और मुगल साम्राज्य में दिन-प्रतिदिन जो नवीन राजनैतिक परिवर्त्तन हो रहा था, उसे पाठकगण पढ़ ही चुके हैं। परन्तु महम्मद शाह के राजत्वकाल में इससे कहीं अधिक उपद्रव होने लगे। इधर अधिकार शून्य राजपुरुषों के अत्याचारों ने प्रजावर्ग में त्राहि-त्राहि मचा रखी थी और उधर मुगलों के दुर्व्यवहार तथा 'जज़ीया' कर से राजपूताना के राजा लोग दुखित होकर यवन साम्राज्य का नाश चाहते थे। किन्तु बेचारे निर्व्वल होने के कारण अवसर की ताक में चुपचाप कान में तेल डाले बैठे रहे।

ठीक इसी समय मालवा के राजा गिरधर राय का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके सम्बन्धी "दया बहादुर" ने मालवा प्रदेश की सूबेदारी पर अधिकार जमा लिया। परन्तु दया बहादुर के अनुचित व्यवहार से प्रजा असन्तुष्ट हो उठी। उसके राज्य कर्म्मचारियों ने प्रजा को और भी कष्ट दिया। बड़े-बड़े ठाकुर, जमींदार एवम् अन्य सूबेदार उसके नारकीय अत्याचार देखकर काँप उठे। उन बेचारों ने कई बार उसके अत्याचारों से घबड़ाकर दिल्ली दरबार से उद्धार पाने को प्रार्थना की। परन्तु व्यर्थ! उनकी उस दीन प्रार्थना का कोई असर न पड़ा। अन्त में सभों ने हताश होकर वीर पेशवा को लिखा। उन्हें विश्वास था कि, वीरवर पेशवा के अतिरिक्त कोई भी नररत्न उन्हें उस विपत्ति से मुक्त न कर सकेगा।

जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह हिन्दूजाति और वैदिक

धर्म के सच्चे रक्षक थे। मुगल राजदर्बार में भो आपका विशेष मान-सन्मान ।था। परन्तु निर्बल होने के कारण हिन्दूजाति और हिन्दूधर्म का नाश होते देखकर भी वह कुछ न कर सकते थे। हिन्दुओं की दुर्दशा देखकर उनका हृदय अवश्य दुखित एवम् क्रोधित हो उठता था। परन्तु निरुपाय थे। बेचारे मुट्ठीभर राजपूतों को लेकर कहाँ तक मुगलोंके सेना-समुद्रका सामना करते? अतः उन्होंने अपने यहाँ के समस्त हिन्दू राजाओं से सलाह कर वीरवर बाजीराव पेशवा को मुगलों का दर्पदलन करने के लिये निमन्त्रित किया। वीर पेशवा तो यह चाहते ही थे। उनकी तो समस्त भारत को महाराष्ट्र शासन के अन्तर्गत करने की इच्छा ही थी। अतः वह बड़ी प्रसन्नता से इस कार्य के निमित्त तैय्यार हो गये।

मल्हारराव होल्कर को बारह सौ युद्ध-विशारद वीरों का अधिनायक बनाकर मालवा विजय करने का आदेश किया। जब होलकर अपनी सेना सहित बुढ़ानपुर में पहुँचे तब इन्दौर के जमींदार नन्दलाल राव ने भी उनका नर्मदा नदी तक साथ दिया।

इधर सूबेदार दया बहादुर ने जब यह समाचार सुना तब वह अपनी सेना लेकर शत्रुपक्ष से मोर्चा लेने के हेतु आगे बढ़ा। उसने मालवा में प्रवेश करने के समस्त रास्तों पर मुगल सेना तैनात कर दी। किन्तु इधर नन्दलाल राव मालवा के रहने वाले होने के कारण वहाँ के अनेक गुप्त मार्गों से भलींभाँति

परिचित थे। अतः महाराष्ट्रीय सेना को गुप्त मार्गों द्वारा मालवा में प्रवेश करते कोई कष्ट न हुआ।

मालवा राज्य में प्रवेश करते ही महाराष्ट्रीय सेना एक बारगी 'हर हर महादेव' का गगन भेदी नाद करती हुई आगे बढ़ी। दया बहादुर उस वीर-गर्जना से घबड़ा उठा। किन्तु अन्य उपाय न देख वह अपनी पठानी सेना सहित महाराष्ट्रीय सेना से जूझ पड़ा। थोड़ी देर में दोनों पक्ष का तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। लाशों के ढेर से रणभूमि पट गई। इस युद्ध का फल यह हुआ कि, वीर महाराष्ट्रों द्वारा दया बहादुर और उनकी तीन हजार पठानी सेना हताहत हुई। बची बचाई सेना अपने भाइयों के साथ "बिहिश्त" की सैर स्वीकार न कर समर भूमि से भाग खड़ी हुई।

इस प्रकार युद्ध में सूबेदार दया बहादुर को परास्त कर महाराष्ट्रों ने मालवा प्रदेश में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। मालावा निवासी महाराष्ट्रों के सुशासनसे अत्यन्त आनन्दित हुए। यह घटना सन् १७३२ ई० की है।

दिल्लीश्वर के अधिकार से मालवा प्रदेश निकल जाने से बादशाह को बड़ा दुःख हुआ और उसे पुनः हस्तगत करने के लिये उन्होंने महम्मद खाँ बंगष को आज्ञा दी। बंगष लाख चेष्टायें करने पर भी मालवा को दिल्लीश्वर के आधीन न कर सका। जब बादशाह ने बंगष को इस कार्य में असमर्थ देखा तब उन्होंने यह कार्य भार महाराज जयसिंह को सौंपा। परन्तु

इसके पूर्व ही बालाजी विश्वनाथ पेशवा और जयपुराधिपति में मित्रता स्थापित हो चुकी थी तथा वर्त्तमान मालवा विजय में भी सवाई जयसिंहजी का ही हाथ था। अतः वह इस कार्य से विमुख हो गये। दिल्लीश्वर उन्हें बहुत मानते एवं डरते थे। अतः उन्होंने उस समय महाराज की बात मान ली। परिणाम यह हुआ कि मालवा प्रदेश का स्थायी शासनाधिकार जयसिंहजी के द्वारा महाराष्ट्रों के हाथ आ गया।

बाजीराव ने मालवा प्रदेश के लिये बादशाह से सनद माँगी। परन्तु उन्होंने लिखित सनद पत्र देना अस्वीकार कर दिया तथा गुजरात देश के सर बुलन्द खाँ से मिलने वाली चौथ और सरदेश मुखी को भी अनुचित बतलाया। बेचारे बुलन्द खाँ को उसके पद से हटाकर उसकी जगह जोधपुर के महाराजा अभयसिंह को गुजरात का 'सूबेदार' बनाया।

जोधपुर के महाराज अभयसिंह बड़े अभिमानी और अत्यन्त क्रूर स्वभाव के पुरुष थे। उनकी क्रूरता के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि, उन्होंने जोधपुर की गद्दी पर बैठने के लिये अपने पूज्य पिता को भी मार डाला था। उन्होंने पीलाजी गायकवाड़ को युद्ध में परास्त कर उन्हें धोखे से गुप्त-घातक द्वारा मरवा डाला। महाराष्ट्र वीर इस समाचार को सुनकर क्रोध के मारे आग बबूला हो गये। उन्होंने भूखे सिंह की भाँति राठौर और मुगल सेना पर टूटकर तत्काल अपनी प्रतिहिंसा की अग्नि शान्त कर ली। महाराष्ट्रों के तीक्ष्ण प्रहार के सम्मुख अभयसिंह

को सेना खड़ी न रह सकी। स्वयम् अभयसिंह महाराष्ट्र वीरों द्वारा आहत होकर रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए और सीधे जोधपुर जाकर पनाह ली।

इस प्रकार युद्धकर गुजरात को अधिकार में करने पर भी महाराष्ट्र को दिल्लीश्वर से लिखित सनद प्राप्त न हुई। अतः बाजीराव को सन् १७३३ ई० में अपने वीर सेनापति होलकर और सेन्धिया को दिल्ली और आगरा लूटकर आधीन बनाने के हेतु भेजना पड़ा।

बीजीराव की उपरोक्त आज्ञा का एक विशेष कारण यह भी था कि, उस समय उनका सामरिक खर्च बढ़ जाने से उनकी आर्थिक अवस्था दयनीय हो रही थी। इसका उन्हें बड़ा मानसिक सन्ताप था। बहुत कुछ विचार करने पर उन्होंने इस कष्ट से मुक्त होने के लिये दिल्ली पर आक्रमण करने का निश्चय किया और उपरोक्त सेनापतियों को दिल्ली लूटने की आज्ञा दी।

धीरे-धीरे जब महाराष्ट्रीय सेना चम्बल नदी तक आ पहुँची तब होलकर ने एक विशाल सैन्य समूह को लेकर आगरे की ओर प्रस्थान किया। स्वतन्त्रता देवी के सच्चे पुजारी वीर महाराष्ट्रों की विकराल कृपाण और लपलपाते हुए भीषण भालों के दर्शन कर बादशाह सलामत अत्यन्त भयभीत हुए और उनके प्रधान 'वजीरे आजम' (खान दौरा) ने महाराष्ट्रों के पास सन्धि का प्रस्ताव पेश किया। महाराष्ट्र वीरों ने इस पत्र के उत्तर में मालवा प्रदेश तथा गुजरात प्रदेश के सरदेशमुखी का सनद पत्र

माँगा। परन्तु बादशाह के तुरानी सरदार इसके विरुद्ध थे। अतः उन्होंने वीर पेशवा के पास यह समाचार भेजा कि—"सनद पत्र के बदले में मैं महाराष्ट्रों को दक्षिण भारत के मुगल शासित प्रदेशों से तेरह लाख रुपये वार्षिक की आय का तथा पश्चिम में बूँदी और कोटा से लेकर पूर्व की समस्त राजपूत रियासतों से दस लाख साठ हजार रुपये वार्षिक आय का कर वसूल करने का अधिकार प्रदान करने को तैयार हूँ।" अन्तिम अधिकार प्रदान करने में खान दौरा, दिल्ली सम्राट तथा अन्य सरदारों का एक गुप्त उद्देश्य यह था कि, जब महाराष्ट्र, राजपुताने से कर वसूल करने जावेंगे तो उस समय रजपूतों से अवश्य उनकी मुठभेड़ होगी। समस्त राजस्थान के राजपूत उनकी जान के ग्राहक बन जायँगे। इस तरह एकही तीर में दो शिकारों के मर मिटने पर मुसल्मानों को अपना पुनरुद्धार करने का अवसर मिलेगा और अवश्य ही उसमें सफलता मिलेगी। परन्तु उन मन्द बुद्धि वालों को इस बात का लेशमात्र भी ध्यान न हुआ कि बाजीराव जैसे राजनीति धुरन्धर व्यक्ति को उनकी यह चाल समझते देर न लगेगी। जब वीर पेशवा को यह समाचार ज्ञात हुआ तब वह इस दुरंगी चाल को समझ गये और बादशाह के उक्त प्रस्ताव को रद्द कर उनके पास नूतन प्रस्ताव भेजा। वह इस प्रकार है—

(१) सम्पूर्ण मालवा महाराष्ट्र को जागीर के स्वरूप में प्राप्त होना चाहिये।

(२) इस प्रदेश के जिन-जिन स्थानों में रोहिलों का अधिकार है उन समस्त प्रदेशों को अपने अधीन बना लेने की आज्ञा मिलनी चाहिये ।

(३) 'राशीन' 'माण्डू' और 'धार' इन तीनों गढ़ों पर महाराष्ट्रों का पूर्ण अधिकार होगा ।

(४) चम्बल नदी के सम्पूर्ण दक्षिण भाग पर महाराष्ट्रों का अधिकार होना चाहिये ।

(५) दक्षिण भारत में "सर देश पाण्डे" पद का अधिकार पेशवा को प्राप्त होना चाहिये ।

(६) काशी, प्रयाग, गया और मथुरा आदि पुण्य तीर्थों का अधिकार महाराष्ट्रों को मिलना चाहिये ।

(७) सर्व प्रमथ बादशाह सलामत पचास लाख रुपया नगद अथवा 'वंगदेश' का कुछ अंश महाराज शाहू को प्रदान करें ।

इस प्रकार बाजीराव ने एक सन्धि पत्र तयार कर बादशाह के पास भेजा । परन्तु बादशाह सलामत ने उन शर्तों को अस्वीकार कर दिया । मन्त्री खान दौरा ने इस अवसर को अपने स्वार्थ साधन का अच्छा मौका समझा और गुप्त रूप से पेशवा से छः लाख रुपया लेकर उन्हें सम्पूर्ण दक्षिण प्रदेश में सरदेश पाँडे का अधिकार लिख दिया ।

इस प्रकार ९० लाख रुपये वार्षिक आय का मुल्क हस्तगत कर बीरवर बाजीराव पेशवा दक्षिण लौट गये । खान दौरा का

पूर्व ही से निज़ाम के साथ शत्रुत्व था। अतः उन्होंने निज़ाम से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से ही पेशवा को समस्त दक्षिण भर में सरदेश पाण्डे का अधिकार प्रदान किया था। चतुर राजनीति-विशारद बाजीराव ने निज़ाम को अपने आधीन करने का यह उत्तम अवसर हाथ से न जाने दिया। उन्होंने दिल्लीपति के मन्त्री खान दौरा को ६ लाख रुपया देकर 'सरदेश पाण्डे' का पदाधिकार प्राप्त कर लिया। इस घटना से निजामुल्मुक बाजीराव के प्रति जल-भुन कर राख हो गये।



१६

वीर बाजीराव का मुगलों से युद्ध

गत परिच्छेद में पाठक जान ही चुके हैं कि, वीरवर बाजीराव ने दिल्लीश्वर के सन्मुख जो प्रस्ताव पेश किया था, वह अस्वीकार हुआ था। अतः वह इस विषय में दूसरे ही किसी उपाय द्वारा कार्य साधन करने का विचार एवम् प्रयत्न करने लगे।

उन्होंने दिल्ली पर आक्रमण करने के हेतु एक विशाल सेना तैयार की। इस समाचार को सुनकर दिल्लीश्वर के होश पस्त हो गये। उन्होंने यह सूचना समस्त दरबारियों

को दे दी तथा निज़ाम से भी अपने कृत अपराधों की क्षमा माँगते हुए सहायता की याचना की। निजाम दिल्लीपति की प्रार्थना सुनकर अपने पूर्व्व अपमानों को भूल गया और भाई की सहायता करने के हेतु दल-बल सहित दिल्ली की ओर चल पड़ा।

वीर पेशवा निज़ाम की यह नमक हरामी सुनकर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने तत्क्षण अपनी सेना लेकर किले की ओर प्रयाण किया। मार्ग में चलते-चलते उस रण कुशल वीर पुङ्गवने अपनी सेना का एक विशेष भाग बुन्देलखण्डाधिपति राजा जगत सिंह के हाथ सौंप दिया और आप कुछ चुने हुए अश्वारोही सैनिक लेकर दिल्ली की ओर बढ़े। दिल्लीश्वर की बादशाही सेना उनसे मोर्चा लेने के हेतु आगरे की ओर अग्रसर हुई।

पेशवा के प्रधान सेनापति वीर होलकर अपने चुने हुए वीरों के साथ आगरा पहुँचने भी न पाये थे कि बीच ही में अयोध्या के सूबेदार 'सहादत खाँ' ने सहसा उनपर आक्रमण किया। इस आकस्मिक आक्रमण से महाराष्ट्रीय सेना बिल्कुल अपरिचित थी। अतः उनके पैर उखड़ गये। मल्हारराव होलकर को भागकर यमुना के उस पार आश्रय लेना पड़ा।

इस क्षुद्र जयलाभ से सहादत खाँ गर्व्व के मारे फूलकर कुप्पा हो गया। उसने अपना बड़प्पन दिखाने के हेतु दिल्ली सम्राट के पास एक लम्बा चौड़ा खलीता भेजा। जिसमें मन-माना रूप से उसने अपनी बहादुरी के स्तुति-स्तोत्र गाये थे तथा यह भी लिख दिया था कि, उसी के अतुल प्रताप के कारण

मल्हारराव होलकर यमुना के उसपार भाग गये हैं। इस पत्र को पढ़कर बादशाह सलामत बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने वीर मल्हार राव का सहादत खाँ द्वारा हारा जाना ही मानों महाराष्ट्रीय शक्ति का अन्त हो जाना समझा और इसी कारण आनन्दोन्मत्त होकर बिना आगा-पीछा सोचे आगरा स्थित महाराष्ट्र दूत को बुरी तरह अपमानित कर आगरे से निकाल दिया। यह घटना सन् १७२४ ई० की है।

जिस समय यह घटना हुई, उस समय वीर पेशवा राजपूताने से 'कर' वसूल करने के हेतु वहीं उपस्थित थे। वह "वहाँ से अपना कार्यक्रम समाप्त कर होलकर की सेना में सम्मिलित होने का निश्चय कर चुके थे। उन्होंने मार्ग में ही महाराष्ट्र सेना का पराजय सुन लिया था। जिसे सुनते ही वह प्रति दिन २० कोस की रफ्तार से अपनी सेना को लेकर दिल्ली पहुँच गये। दिल्ली में पहुँचते ही पेशवा की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी और वहीं उन्होंने इस बात की प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक वह दिल्ली-पति से महाराष्ट्र दूत के अपमान का प्रतिशोध न ले लेंगे तब तक कभी शान्त न होंगे।

उनके आगमन से दिल्ली में विचित्र तूफान उठ गया। चारो ओर लोग त्राहिमाम्-त्राहिमाम् मचाने लगे। किन्तु वीर पेशवा प्रजापुञ्जको किसी भी तरह का कष्ट देना नहीं चाहते थे। उन्होंने बिना किसी वादाविवाद के इस मामले को तय करने के विचार से एक सन्धि प्रस्ताव दिल्लीपति के पास लिख भेजा।

इसी बीच सूबेदार सआदत खां एक विशाल सेना लिये आगरा में जा डँटा। अब तो पेशवा ने समझ लिया कि, बिना युद्ध किये म्लेच्छों की बुद्धि ठिकाने नहीं आ सकती। यही विचार कर उन्होंने अन्तमें युद्ध करना ही निश्चय किया और दिल्ली के ईशान-कोण स्थित एक विशाल मैदान में पड़ाव डाला। इधर जैसा ऊपर लिखा है, पेशवा का सन्धि प्रस्ताव पाकर दिल्ली दरबार के अमीर उमराव यह समझे, कि, पेशवा भयभीत हो गये हैं। इसी विचार से प्रेरित होकर पेशवा को युद्ध से भयभीत जान उन्होंने एक-व-एक आठ हजार सेना लेकर बाजीराव पर चढ़ाई कर दी। किन्तु वीर पेशवा तो पूर्व ही से सावधान थे। उन्होंने देखते-देखते मुगलों को छका मारा। उनकी सारी अकड़फूँ जहाँ की तहाँ ठण्ढी हो रही। परिणाम स्वरूप यवनों के दो हज़ार घोड़े और एक हाथी पेशवा को प्राप्त हुआ। इसी भाँति बाजीराव दिल्ली के सर्दारों को परास्त कर ज्योंही विश्राम करने की बात सोच रहे थे कि सहसा एक मुग़ल सेनापति कमरुद्दीन खां ने उनपर आक्रमण किया। पुनः एकबार मरहठों एवम् मुगलों की गहरी मुठभेड़ हो गयी। सारे दिन उभय पक्षीय वीर पुङ्गव इस तरह जान तोड़ कर लड़े कि, सायङ्काल तक विजय लक्ष्मी इस बात का निश्चय न कर सकी कि, किसे विजयमाल पहिनायी जाय। निदान निशादेवी का घोर साम्राज्य फैलते ही दोनों को अपनी-अपनी तलवारें म्यान में करनी पड़ीं। महाराष्ट्र वीर पेशवा कृष्णपक्षीय निशा के घन-घोर अन्धकार में ही मुगलदल से जूझने के हेतु तैय्यार हो गये।

किन्तु इतने ही में मुगलों ने वीरवर बाजीराव का वर्चस्व स्वीकार कर लिया और दिल्लीपति के मन्त्री ख़ानदौरा को भेजकर वीरवर बाजीराव से सन्धि की प्रार्थना की। इसी समय दैववशात् बाजीराव को महाराष्ट्र पति की ओर से कोंकण स्थित अंग्रेजों का दमन करने के हेतु बुलाहट हुई। जिसके कारण उन्हें बाध्य होकर इस समय दिल्ली नरेश से सन्धिकर सितारा लौट जाना पड़ा। इस सन्धि के उपलक्ष में बादशाह ने महाराष्ट्रपति को १३ लाख रुपये नगद और मालवे का हिस्सा भेंट किया।



१७

(निजामुल्मुल्क के साथ महाराष्ट्रों की मुठभेंट)

उक्त युद्ध में दिल्लीश्वर की सहायता करने के कारण निजामुल्मुल्क के पुत्रों को बादशाह की ओर से मालवा और गुजरात प्रदेश की सूबेदारी मिली थी। निजामुल्मुल्क ने दिल्ली नरेश से इस आशय का पक्का सनद-पत्र ले लिया था।

बाजीराव ने जिस समय निज़ाम का दिल्लीश्वर के सहायतार्थ जाने का समाचार सुना था, उस समय उन्होंने अपने भ्राता चिमणा जी अप्पा को इस बात की सूचना कर दी थी और लिख

दिया था कि, वह निजाम के पहिले ही नर्म्मदा पार कर जायँ और निजाम का मार्ग रोक दें। परन्तु चिमणा जी अप्पा उस समय पोर्तुगीजों का दमन करने में व्यस्त थे, इस कारण वह बाजीराव की इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ रहे। निजाम अपना मार्ग निष्कण्टक पाकर बड़ी सरलता से अपना दल-बल लिये नर्मदा पार कर गया और सीधा दिल्ली सम्राट के सन्मुख जा उपस्थित हुआ।

उधर दिल्ली सम्राट ने वीरवर बाजीराव से जो सन्धि की थी, उसे वह कुछ काल में ऐसे भूल गये, मानो वैसी कोई सन्धि हुई ही नहीं थी। उन्होंने अपने स्वाभाविक अहङ्कार में आकर निजाम को पुनः महाराष्ट्रों के विरुद्ध उत्तेजित किया। केवल इतना ही नहीं, वरन् इस समय उन्होंने अपने समस्त राजपूत शूर सामन्तों के भी मनमानारूप से कान भरे। उन्हें निजाम की सहायता करने को कहा। इस युद्ध में वीरवर बून्दी नरेश को छोड़कर सारे राजपूत नरेश निजाम के साथ रहे। यहाँ तक कि, जयपुर नरेश महाराज जयसिंह को भी वाध्य होकर अपने पुत्रको निजाम की सहायता के लिये भेजना पड़ा था। रोहिला सर्दार भी निजाम ही के पक्ष में था।

इसप्रकार अनेक सहायक देखकर निजाम मारे घमण्ड के फूल कर कुप्पा हो गया और पेशवा से युद्ध करने के हेतु मालवा के अन्तर्गत 'सिरोंज' में जा उपस्थित हुआ। उस समय उसके साथ प्रायः एक लाख सेना थी। इसके अतिरिक्त कोटा के राजा दुर्ज-

जसाल और अयोध्या के नवाब सआदत खाँ के भतीजे बीस हज़ार सेना लेकर अकस्मात् उसकी सहायता करने को प्रस्थान कर चुके थे। उधर औरङ्गाबाद में दस बारह हजार यवन सैनिक पहिले ही से पेशवा की गति रोकने के लिये तैयार बैठे थे।

इधर वीर पेशवा को यह हाल मालूम होते ही वह भी ८० हज़ार महाराष्ट्र वीरों को साथ लेकर निज़ाम से सामना करने के लिये चल पड़े।

भूपाल दुर्ग के पास निजाम का सेना शिविर था। उस स्थान पर शिविर के एक ओर एक नदी सर्पाकार बह रही थी और दूसरी ओर एक विशाल सरोवर था। इन दोनों के मध्य में रहने से उन्होंने अपनी सेना को विशेष सुरक्षित समझा। वह सोचने लगे कि, प्रकृति के वह दो सुदीर्घ जल-स्रोत महाराष्ट्रों के आक्रमण को किले की दीवाल की तरह रोकने में सहायक होंगे तथा उनकी सेना सुरक्षित रहेगी।

इस भाँति अपनी बुद्धि के अनुसार अपनी रक्षा का प्रबन्ध कर वह पेशवा के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे। अब भी वह पेशवा पर पहिले आक्रमण करने से डरते थे। निदान पेशवा छाती पर पहुँच ही गये। उन्होंने आकर पहिले ही दिन पाँच सौ निज़ामियों को युद्ध भूमि में सुला दिया। परिणाम स्वरूप उसी दिन यवनों के ७०० अश्व महाराष्ट्र वीरों को प्राप्त हुए।

दूसरे दिन पुनः युद्ध हुआ। उस दिन निज़ाम के पन्द्रह सौ

सैनिकों ने रण भूमि में प्राण विसर्जन किये। पेशवा ने शत्रु की सेना को चारो ओर से घेर लिया तथा उसपर तोपों की भीषण मार करनी आरम्भ कर दी। इस तरह हर प्रकार से अपनी हानि होते देख निज़ाम के होश दुरुस्त हो गये। उनकी दशा उस समय ठीक पिञ्जड़े में फँसे हुए पत्ती को तरह हो गयी थी। अस्त्र-शस्त्र तथा रसद् पानी समाप्त हो चला था। विवश होकर उन्होंने बादशाह के सन्निकट एक विश्वस्त अश्वारोही द्वारा अपना समस्त कच्चा चिट्ठा लिख भेजा। परन्तु उधर वजीर खानदौरा और बादशाह में विद्वेश हो जाने के कारण दोनों में से कोई भी निजाम की सहायता करने के लिये न उद्यत हुए और न उन्हें अस्त्र-शस्त्र या रसद् पानी ही भेजा। अयोध्या के नवाब निज़ाम के सहायतार्थ बीस हजार सैनिक लेकर चल चुके थे। परन्तु अबतक उनका भी पता न था।

धीरे-धीरे निज़ामी सेना में रसद् पानी का बिल्कुल ही अभाव हो गया। निज़ामी-सेना क्षुधा-पीड़ित होकर मन-ही-मन निजाम को कोसने एवं जीते जी मौत का मज़ा उठाने लगी। निज़ाम का पुत्र नवाब "नासिरजंग" अपने पिता की सहायता के हेतु भूपाल के मार्ग से सेना सहित चला भी था। किन्तु उसे बाजीराव के भ्राता चिमाणा जी अप्पा ने रोक लिया।

इसप्रकार उस ओर से निराश होने पर निजाम ने अपने अन्तिम प्रयत्न स्वरूप एकबार जी खोलकर अपने दल-बल सहित पेशवा पर आक्रमण किया। परन्तु महाराष्ट्रवाहिनी के साथ

भयंकर तोपें और युद्धोपयोगी सामान पर्याप्त संख्या में होने के कारण निज़ाम की वह चेष्टा विफल हुई। पड़ाव से हटते ही महाराष्ट्रों ने टिड्डीदल की भाँति उनपर टूटकर उन्हें मार भगाया। निज़ाम अपनी जान बचाकर भूपाल दुर्ग में जा छिपा।

उसके दुर्ग में आश्रय ग्रहण करने पर महाराष्ट्रों ने उसपर भी गोलों की वर्षा आरम्भ कर दी। उस समय पेशवा के पास दुर्ग को नष्ट-भ्रष्ट करने योग्य तोपें नहीं थीं तथापि धनुष विद्या विशारद वीर सैनिकों के विषाक्त बाण और सनसनाती हुई गोलियों की वर्षा से निजाम को विवश होकर वह दुर्ग परित्याग करना पड़ा। अब तो वह प्राणों की बाजी लगाकर दुर्ग के बाहर निकल आया और अपनी विकराल तोपों द्वारा महाराष्ट्रों का नाश करने लगा। पेशवा ने निजाम की उन तोपों को हस्तगत करने की प्राणपण से चेष्टा की। पर व्यर्थ! उसमें उन्हें यश न मिला। अब तो वह भीषण रूप से क्रुद्ध हो उठे और अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध करने लगे।

२४ दिन तक युद्ध होता रहा। अन्त में निज़ाम की हार और पेशवा की विजय हुई।

दक्षिण (हैदराबाद) के प्रबल-प्रतापी नवाब निज़ाम बहादुर सम्पूर्ण रूप से पेशवा द्वारा दुर्दशाग्रस्त होकर उनसे क्षमा प्रार्थी हुए। महाराष्ट्रपति से सन्धि स्थापन करने के लिये बाजीराव ने उनके सम्मुख कई एक शर्तें पेश कीं। जिनका मुख्य आशय यह था :—

(१) सम्पूर्ण मालवा देश तथा नर्म्मदा और चम्बल नदी के मध्य का समस्त भू भाग, महाराष्ट्रों के अधिकार में हो। इसकी व्यवस्था स्वयम् निजाम बादशाह से कह कर करनी होगी।

(२) इस युद्ध के दण्ड स्वरूप निज़ाम को ५० लाख रुपये देने होंगे।

निजाम ने पेशवा की दोनों शर्तें सन् १७३८ ई० के ७ जनवरी को स्वीकार कर लीं।

बाजीराव ने नासिरजंग की गति रोकने के लिये चिमणा जी आप्पा के पास जो पत्र लिखा था उसमें—"निजाम की हार पर आश्चर्य प्रकट करते हुए उन्हें "अपने वीर सर्दार दाभाड़े, भोसला, यादव, गायकवाड़ आदि वीरों के साथ वापस लौट आने की बात लिखी थी। उस समय उनकी इच्छा समस्त महाराष्ट्र वीरों को एकत्रित कर समस्त दक्षिण भारत को मुगलों से मुक्त करने को थी। परन्तु ! परस्पर की फूट के कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सका !

. वीर पेशवा ने सन् १६३८ ई० की ८ जनवरी को चिमणा जी आप्पा के पास पुनः एक पत्र लिखा था। जिसमें निजाम की दारुण स्थिति का वर्णन करते हुए इस बात का चित्रचित्रण किया था कि उन्होंने किसप्रकार की अनिच्छा से, केवल निर्बलतावश पेशवा से सन्धि की थी।

इस युद्ध में कोटा के राजा दुर्जन साल तथा राजपूताने के प्रायः सभी राजाओं ने निज़ाम महोदय का पक्ष अवलम्बन कर

महाराष्ट्रों से युद्ध किया था। परन्तु वीर बाजीराव की विजय हुई देख दुर्जन साल ने उनसे क्षमा माँग ली। राजा साहब का "नौहरगढ़" नामक किला उस समय मुगलों के अधिकार में था, जिसे पेशवा ने स्वयम् जीतकर दुर्जन साल के सुपुर्द किया। यह घटना सन् १७३८ ई० के मार्च महीने की है।



१८

(बादशाह नादिरशाह का भारत में आगमन)

विदेशियों के आगमन काल के आरम्भ में दिल्ली में जो राजनैतिक अराजकता उत्पन्न हुई थी उसके कारण भी पेशवा को अत्यन्त कष्ट सहने पड़े थे। वह ज्योंहीं कोंकण स्थित पोर्तुगीज़ लोगों के दमन कार्य से निवृत्त हुए त्योंही उन्हें पुनः एक भयंकर सम्वाद ने युद्ध के लिये वाध्य किया।

वीर बाजीराव ने सुना कि, नादिरशाह भारत में पहुँचकर दिल्ली आदि लूटते, वहाँ के सम्राटों को बन्दी बनाते, १ लाख

सेना लेकर दक्षिण विजय के हेतु आगे बढ़ रहा है। इस समाचार को सुनकर उनके बाहु स्फुरण करने लगे। उन्होंने बड़े उत्साह से उस आततायी से टक्कर लेने के हेतु सेना तैयार करते हुए नासिरजंग को सहायता के लिये पत्र लिखा। जिसमें लिख दिया—"घर की शत्रुता से बाहर का शत्रु प्रबल होता है। अतः इस समय हमें एक होकर उसकी गति को रोकें। तत्पश्चात् एक दूसरा पत्र अपने भाई चिमणा जी अप्पा को लिखकर उन्हें अपने पास बुलवा लिया।

उपरोक्त पत्र भेजने के दो-तीन दिन पश्चात् उन्होंने एक पत्र अपने गुरु श्री ब्रह्मेन्द्र स्वामी को लिखा था। जिसमें उनके श्री चरणों के प्रति अपनी प्रगाढ़ निष्ठा जतलाते हुए, उन्हें नादिरशाह का आक्रमण, देशकी स्थिति इत्यादि विषय समझाते हुए उनकी राय पूछी थी।

इसके पश्चात् गुरुदेव ने उन्हें जो पत्र लिखा था उसका उत्तर उन्होंने २४ मार्च के पत्रमें इस प्रकार दिया है:—

"गुरुदेव का कृपा पत्र प्राप्त कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। इस समय नादिरशाहने दिल्लीपर पूर्णरूप से अपना सिक्का जमा रखा है तथा वह हमें परास्त करने के हेतु दक्षिण यात्रा के विचार में है। इसके पूर्व ही मैं चाहता हूँ कि, हमारी सेना चम्बल नदी पारकर उसे मार्ग ही में रोके, ताकि, वह आगे न बढ़ सके। देखूँ, मेरे इस कार्य में मुझे कहाँ तक सफलता मिलती है!"

१७

(नादिरशाह का स्वदेश गमन)

नादिरशाह ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया है यह समाचार कई दिन तक दिल्ली दर्बार में नहीं पहुँचा था। यहाँ तक कि नादिरशाह ने सिन्धु नदीको पारकर पञ्जाब में प्रवेश किया तो भी दिल्ली वालोंको इसको कोई खबर न रही। इसका कारण था, केवल पेशवा का वीरत्व और धाक। क्योंकि पेशवा के दमन की आवश्यकता दिल्ली दर्बार को विशेषरूप अनुभूत हो रही थी। ऐसे समय नादिरशाह ने बिना किसी बाधा के

भारत में प्रवेश कर दिल्ली को आधीन कर लिया। वहाँ प्राय: ३१ करोड़ रुपये की सम्पत्ति उसने लूट ली थी और असंख्य नरहत्यायें की थीं। सारे नगर की सड़कें रक्त से प्लावित हो उठी थीं। वहाँ की लूट में उसे जो बहुमूल्य सामान मिले थे, उनमें से केवल बादशाही तख्त का मूल्य ८ करोड़ रुपया था। इतनी दौलत पाकर वह तृप्त हो गया। उसने दक्षिण भारत जीतने का विचार त्याग दिया और वह पेशवा के साथ बिना युद्ध किये ही स्वदेश लौट गया।

२०

(फिरङ्गियों का अत्याचार)

वीर बाजीराव जिस समय पेशवा पद पर प्रतिष्ठित हुये थे उसी समय से पोर्तुगीज़ (फिरङ्गी) लोग महाराष्ट्रोंके कट्टर शत्रु बन बैठे थे। उनकी शक्ति धीरे-धीरे बढ़ रही थी और उन्होंने 'गोवा' दोबोला, दमण, दीऊ, साष्ट्री, मुसई आदि स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया था। वहाँ अपना अधिकार जमाकर उन्होंने वहाँ के निवासियों को त्रास देना एवम् जबर्दस्ती ईसाई धर्म में दीक्षित करना आरम्भ कर दिया।

उन्होंने उस समय अपने धर्म-प्रचार कार्य के लिये संगठित रूप से तत् स्थानीय-हिन्दू-मुसलमानों के प्रति जो अमानुषिक अत्याचार किये थे, वह हिन्स्त्र पशु को भी लज्जित करने वाले थे। दनादन मस्जिदें और मन्दिर गिरा दिये गये थे और तरह तरह के अत्याचारों से बाजार गरम कर रखा था।

उस समय उनका अत्याचार इतना बढ़ा चढ़ा था कि, वह ग्राम में प्रवेश करके वहाँ के जमींदारों को लूटकर कङ्गाल बना डालते थे। निर्धन गरीब श्रमजीवी को हठात् पकड़ कर उनसे काम लेते और वेतन देने के बदले उन्हें पीट पाटकर अपने धर्म में मिलाने का प्रयत्न करते थे। जो लोग बिना मजूरी लिए हुए सम्पूर्ण दिवस परिश्रम करते उन बेचारों को भी सायङ्काल को एक मुट्ठी अन्न के लिये तरसना पड़ता था। उनकी औरतें भ्रष्ट की जाती थीं। उनके इन असहनीय अत्याचारों से देश त्रस्त हो उठा। कितने ही लोग अपनी मातृभूमि का परित्याग कर महाराष्ट्र शासित देशों में जाकर रहने लगे थे। अन्त में अत्याचारों से पीड़ित होकर उन्होंने पेशवा की शरण ली। उनका आह्वान सुनकर वीरवर बाजीराव ने अपने बन्धु चिमाणजी अप्पा को कोकण भेज दिया और पोर्तुगीजों को उस आसुरी लीला का समाचार महाराज शाहू को लिख भेजा। उनकी सम्मति लेकर वह भी पोर्तुगीजों को दण्ड देने के हेतु आगे बढ़े।

महाराष्ट्रवाहिनी के सेना नायक वीरवर आंग्रे ने इसके पूर्व ही पुर्तगीजों को दमन करने में असमर्थ होकर महाराष्ट्रपति से सहा-

यता की प्रार्थना की थी। अतः वह भी बीरवर पेशवा के साथ हो गये। कुलाबाके निकट फिरंगियों से उनकी मुठभेड़ आरम्भ हुई। वीरवर पेशवा ने अपने अमोघ पराक्रम द्वारा फिरङ्गियों का गर्व्व-खर्व्व कर उन्हें अस्त-व्यस्त कर डाला और उनके गर्वित मस्तक पर अपनी विजय पताका गाड़ दी।

कुलाबाके विजय करने पर वीर पेशवा ने "साष्ठी" और "वसई" नामक प्रदेशों पर धावा बोल दिया और सर्व प्रथम वसई के निकटस्थ "घोड़ा बन्दर" दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। तदनन्दर ठाणा नगर को भी पुर्तगीजों के हाथ से छीन लिया। इसके पश्चात् वह फिरंगियों के 'बान्द्रा' नामक सैनिक निवास स्थान को अपने आधीन कर लेने के हेतु आगे बढ़े।

पेशवा के वहाँ पर आक्रमण करते हो अंग्रेजों ने गुप्तरूप से पोर्तुगीजों की सहायता करने का निश्चय किया। कारण पास ही 'गण' नामक स्थान में उनकी कोठी होने के कारण उन्हें उसके हाथ से निकल जाने का भय था।

इसी समय अकस्मात् उन्हें यह भयङ्कर समाचार मिला कि, दिल्ली में मराठों की शक्ति कम करने के लिये भयङ्कर षड्यन्त्र रचा जा रहा है। इस समाचार को सुनते ही उन्होंने बान्द्रा विजय का विचार छोड़ दिया और वह यवनों को परास्त करने के हेतु आगे बढ़े।

भूपाल के निकट पहुँच कर उन्होंने निज़ाम को पुनः एक बार अपने लम्बे भाले का मज़ा चखा दिया। अस्तु,

पेशवा के उत्तर भारत की ओर अग्रसर होनेके पश्चात् चिमाणा जी अप्पा ने फिरङ्गियों के साथ पूरे दो वर्ष तक युद्ध करके तारा-पुर, साष्टी, माहिम आदि प्रदेशों पर महाराष्ट्रीय विजय पताका फहरा दी। इस महासंग्राम में अङ्गरेज और हवशीगण भी फिर-ङ्गियों के सहायक थे। परन्तु फिर भी वह महाराष्ट्रवाहिनी को परास्त न कर सके।

इस युद्ध में अङ्गरेजों के सौ से अधिक बड़े-बड़े जहाजों पर लदी युद्ध सामग्री नष्ट हुई थी और उनके कई प्रसिद्ध सेनापति परलोक चल बसे थे।

पश्चात् सन् १७३६ ई० में महाराष्ट्रों ने बसई पर आक्रमण किया। कोकण भर में पोर्तगीजों का केवल यही एक प्रधानकिला था।

वीर चिमणा जी अप्पा तीन महीने तक उस दुर्ग को आधीन करने की चेष्टा करते रहे। किन्तु कृत कार्य न हो सके थे। फिरङ्गियों ने यूरप (इंगलैण्ड) से शिक्षित सैन्य लाकर दुर्ग की रक्षा की थी। उनकी तोपों के गोलों के सम्मुख महाराष्ट्र सेना का खड़ा रहना महा कठिन हो गया था।

वीर चिमणाजी अप्पा ने जब देखा कि किसी भाँति दुर्ग को आधीन करना कठिन है तो उन्होंने सुरङ्ग खोदकर बारूद द्वारा दुर्ग को उड़ाने का प्रयत्न किया। वीर महाराष्ट्रों के गोलन्दाजों ने तोपो के गोले चला-चलाकर दुर्ग के दीवार में एक बड़ा छेद भी कर डाला था। परन्तु इतना सब कुछ करने पर भी दुर्ग हस्तगत न हो सका।

जब चिमणाजी अप्पाकी सेना बसई दुर्ग को किसी भी भाँति जीत न सकी तब वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने सेनापतियों को उद्देश्य कर बोले—"यदि ऐसा ही है तो कृपया मुझेही तोपके मुँह पर रखकर दुर्ग में पहुँचा दीजिये।"

चिमणाजी अप्पा के इस व्यङ्ग एवम कर्णकटु वाक्य से महाराष्ट्र सेनापति भीषण रूपसे उत्तेजित हो उठे। उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगाकर दुर्ग पर धावा बोल दिया। इस बार के युद्ध में बीर महाराष्ट्रों को पूरा यश प्राप्त हुआ और उन्होंने बसई दुर्ग को लेही कर छोड़ा। बसई दुर्ग पर महाराष्ट्रों का 'भगवा झण्डा' फहराने लगा। इस युद्ध में फिरंगियों के सात सौ बीर मारे गये।

इस संग्राम में विदेशियों को उक्त प्रदेशों से विताड़ित करने में 'दक्षिणियों' ने जो बीरता एवम् शूरता दिखाई वह सराहनीय है। उन्होंने केवल 'गोआ' प्रदेश को छोड़कर समस्त प्रदेशों को फिरंगियों के हाथ से छीन लिया।

बसई दुर्ग पर महाराष्ट्रों का अधिकार होने के साथ ही साथ दुर्गेश के परिवार की एक अत्यन्त सुन्दर नवयौवना तरुणी वीर चिमणाजी अप्पा के हाथ लगी। परन्तु धर्मपरायण चिमणा जी ने सम्मान पूर्वक उस महिला को उसके आत्मीय लोगों के पास भेज दिया। बसई निवासी ईसाईगण वीर चिमणाजी अप्पाकी इस सम्बन्ध में अब तक प्रशंसा करते हैं।

नादिर शाह की भयंकर डकैती के कारण दिल्ली ऐसी श्री हीन होगयी थी कि, उस समय वीर पेशवा मुगलों का आधिपत्य दिल्ली से हटाना चाहते तो सहज ही में हटा सकते थे। किन्तु उनके उदार हृदय ने विपत्तिमय स्थिति में फँसे हुए बूढ़े बादशाह को बिना कारण त्रास देना उचित न समझा। वरन उलटे उनके पास १०१ स्वर्ण मुद्रा उपहार स्वरूप भेज दी।

दिल्ली की अवस्था

बादशाह सलामत बाजीराव के इस व्यवहार से बड़े प्रसन्न हुए और बाजीराव की उदारता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए उन्हें सन् १७३९ ई० में एक रत्न जड़ित हार तथा जरीदार पोशाक समर्पण किया था।

निजाम ने महाराष्ट्रों द्वारा पराजित होने पर भूपाल के निकट पेशवा से जो सन्धि की थी, उसका पालन नहीं किया। बाजीराव का बादशाह से साक्षात् होने पर उन्होंने मालवा की 'सूबेदारी' के सम्बन्ध में कोई जिक्र नहीं छेड़ा और न उन्होंने मालवा प्रदेश के लिये कोई नवीन सूबेदार ही नियुक्त किया।

अतः पेशवा ही मालवा प्रदेश की सूबेदारी देखने लगे।



२२

निजाम की नीचता

नादिरशाह का उन्माद उतारने के लिये वीर पेशवा के जो सरदारगण दिल्लीश्वर को सहायता के हेतु कोकण से रवाना हुए थे, उनके पहुँचने के पूर्व ही नादिरशाह दिल्ली को लूटकर स्वदेश लौट गया। अतः इस यात्रा को सफल बनाने के हेतु पेशवाने राजपुताने के राजाओं के साथ मैत्री स्थापन करना निश्चय किया। अल्पकाल में ही उन्होंने राजपूताने के समस्त राजाओं को महाराष्ट्रों का मित्र बना

लिया। उसी समय उन्होंने पुनः निजाम के विरोधी होने का संवाद सुना।

वीरवर बाजीराव ने इस बार निजाम का अस्तित्व समस्त दक्षिण भारत से मिटा देने का निश्चय किया और सुअवसर का अनुसन्धान करने लगे।



२३

निजाम के साथ पुनः महाराष्ट्रों का युद्ध ।

इस समय निजामुल्मुल्क की राजपताका उत्तर भारत में फहरा रही थी। उनके पुत्रों में भ्रातृ विरोध आरम्भ हो चुका था। बस, इसी समय को उपयुक्त देख वीर पेशवाने निजाम के पुत्र नासिरजंग पर आक्रमण किया। औरंगाबाद में उभय सेनाओं में गहरी मुठभेड़ हो गयी। इस समाचार को सुनकर 'बरार' देशसे असंख्य सेना नासिरजंग की सहायता के लिये पहुँची। इस सेना के आने से नासिरजंग की सेना बयालीस हजार हो गई। उसमें १९ हजार घुड़सवार योद्धा और २३ हजार

पदल सिपाही थे। इसके अतिरिक्त डेढ़ सौ तोपखाने और तीन सौ लक्षभेदी वीर भी उनके साथ थे।

इस सेना के पहुँचते ही महाराष्ट्रों की अल्प सेना देखकर नासिरजंग ने अकस्मात् चारों ओर से महाराष्ट्रवाहिनी पर आक्रमण कर दिया। महाराष्ट्र वीर अल्प संख्या में होने पर भी शत्रु के सम्मुख वीरता के साथ डटे रहे। नासिरजंग ने प्रबल रूप से महाराष्ट्रों को रौंदना आरम्भ किया। किन्तु इसी समय अकस्मात् वीर चिमणा जी अप्पा, वीरवर होलकर और राणोंजी सेंधिया को लिये अपने दल-बल सहित पेशवा की सेना में जा सम्मिलित हुए। पुनः एकबार घोर संग्राम छिड़ गया। अब तो महाराष्ट्रीय सेना जमकर यवनों से युद्ध करने लगी। थोड़ी ही देर में युद्धका रंग पलट गया। यवन सेना भागने लगी। नासिरजङ्ग ने उसे रोकने की बहुत चेष्टा की। परन्तु व्यर्थ। शत्रुओं को भागते हुये देख महाराष्ट्रों ने उनका पीछा किया। शत्रुओं की सेना पुनः महाराष्ट्रवाहिनी के सम्मुख टिक न सकी और भागकर जंगल पहाड़ों में घुस पड़ी। उसके खोजने और परास्त करने में महाराष्ट्रों को दो तीन मास तक जङ्गल जङ्गल पहाड़ पहाड़ में भटकना पड़ा तथा साथ ही साथ अन्न जल के लिये भी कष्ट उठाना पड़ा। अन्त में वह सेना एक दिन महाराष्ट्रों के जबर्दस्त पञ्जे में फँस ही गयी। नासिरजङ्ग बुरी तरह अपमानित एवम् लज्जित हुआ।

२४

(नासिरजङ्ग द्वारा सन्धि की प्रार्थना)

नासिरजङ्ग ने अपना पराजय स्वीकार कर बाजीराव से सन्धि की प्रार्थना की। यद्यपि पेशवा की आन्तरिक इच्छा सन्धि करने की नहीं थी तथापि इस समर में प्रजा को जो दुख झेलना पड़ा था उसका ध्यान रखते हुए उन्हें उस समय विवश होकर सन्धि करनी पड़ी। यह सन्धि सन् १७४० के मार्च महीने में हुई थी।

उपरोक्त सन्धि में नासिरजङ्ग ने खारगौठा और "हिण्डिया" नामक दो मुगल प्रदेश महाराष्ट्रपति को अर्पण किये। इस सन्धि के पश्चात् बाजीराव ने अपना रुख उत्तर भारत की ओर बदला और वीरवर चिमणाजी आप्पा कोंकण प्रदेश को लौट आये।



२५

(ब्राह्मण वीर बाजीराव पेशवा की मृत्यु)

उत्तर भारत को ओर अग्रसर होते समय बाजीराव का विचार "कटक" तक जाने का था। किन्तु उनकी इच्छा पूर्ण न हुई। नर्मदा नदी तक पहुँचते ही वह रोग ग्रसित हो गये और १७४० ई० की २८ अप्रैल को उन्होंने अपनी ४१ वर्ष की अवस्था में अकस्मात् स्वर्ग यात्रा की। उनकी मृत्यु का समाचार सारे देश में फैल गया। स्वयम् महाराष्ट्रपति इस शोक समाचार को सुनकर मूर्छित हो गये। उनकी उस विरह व्यथा का चित्र-चित्रण भला यह क्षीण लेखनी कहाँ तक कर सकती है?

बाजीराव की मृत्यु ने केवल महाराष्ट्र मण्डली में ही नहीं, वरन् समस्त हिन्दू राजे-रजवाड़े शूर-सामन्त सैनिक तथा नागरिकों में भीषण हाहाकार मचा दिया था। ऐसा कोई हिन्दू राजा वीर नहीं था, जिसने उनके लिये दो आँसू न टपकायें हों। उनके परिवार का पूछना ही क्या था। पाठक इसका अनुमान स्वयम् कर लें।

२६

उपसंहार ।

बाजीरावने पेशवा पद पर प्रतिष्ठित होकर २० वर्ष जननी जन्म भूमि की सेवा की। उनके जीवन का अधिकांश समय युद्ध में ही व्यतीत हुआ था। उनके ऐसा दूरदर्शी और प्रचण्ड पराक्रमी पुरुष वहुत ही बिरले हुए हैं। वह अपूर्व महत्वाकांक्षी सरल और दयालु पुरुष थे। शत्रु की दया याचना पर वह सदा क्षमा कर दिया करते थे।

इसी दयालुता के कारण ही उन्हें बार-बार कष्ट उठाना पड़ा था। किन्तु उन्होंने कभी भी उसकी चिन्ता नहीं की। अस्तु;

जिस प्रकार छत्रपति शिवाजी को श्री समर्थ रामदास से मन्त्रणा मिला करती थी उसी प्रकार बाजीराव को श्रीब्रम्हेन्द्र स्वामी से मिला करती थी। इसी सत्पुरुष के उपदेशों के कारण ही वीरवर बाजीराव को अखिल भारत का सार्व्व भौमत्व प्राप्त हो गया था। उपरोक्त महापुरुष का जन्म ई० १६४९ में बरार देश में हुआ था। आप का बचपन का नाम 'विष्णुपन्त' था। जिस किसी पुरुष को भगवान अपनी सेवा में लेना चाहता है, उस पुरुष के उत्पन्न होते ही वैसी अवस्था आरम्भ हो जाती है। जिस समय विष्णुपन्त १२ वर्ष के थे, वैराग्य की प्रथम सीढ़ी उनके सामने उपस्थित हुई। उनके माता पिता का देहान्त हो गया। १५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने काशी क्षेत्र में जाकर वेदान्त का अध्ययन किया और वहाँ के परम ज्ञानी महात्मा "ज्ञानेन्द्र सरस्वती" से ब्रह्म विद्या प्राप्त की। "गुरु ज्ञानेन्द्र सरस्वती" विष्णुपन्त जैसे परीक्षार्मी सच्चे शिष्य को प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने विष्णुपन्त को ब्रह्मेन्द्र स्वामी के नाम से विख्यात किया।

"ब्रह्मेन्द्र स्वामी" ने गुरु महाराज से ब्रह्मविद्या प्राप्त करके उनकी आज्ञा से स्वदेश सेवा का कार्य आरम्भ करने के लिये प्रस्थान किया। प्रथम उन्होंने समस्त तीर्थों का दर्शन किया। तदनन्तर १६६८ ई० में कोंकण में चले गये। वहां चिपलुण के निकट 'परशुराम' क्षेत्र में १२ वर्ष तक उन्होंने कठोर तपस्या की और एक मठ भी स्थापित किया। मठ की स्थापना के पश्चात् वह धर्मोपदेश के साथसाथ वहाँ के नागरिकों को 'स्वराज

का उपदेश देने लगे। काकण निवासी समस्त धनी गरीब लो॰ उनके निकट पहुँचते थे और शिक्षा ग्रहण करते थे। बस, यहीं से स्वामीजी राजनैतिक क्षेत्र में कूदे।

बालाजी विश्वनाथ पन्त की मृत्यु के उपरान्त वह महारा॰ राजधानी सितारा में जा पहुँचे। बालाजी तथा उनके कुटुम्बिय॰ पर स्वामीजी की विशेष कृपा दृष्टि थी। स्वामीजो ने अनेकों ब॰ बालाजी तथा उनके पुत्र बाजीराव की बिपन्नावस्था में धनादि से सहायता की थी। बालाजी के स्वर्गवास के पश्चात् बाजीराव के आधारस्तम्भ एकमात्र स्वामीजी ही थे। जब कभी बाजीराव के सम्मुख कोई भीषण समस्या आ उपस्थित होती थी, वह स्वामीजी का आश्रय ग्रहण करते और स्वामी जी उसका निवा॰ कर देते थे। अस्तु! बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उन्हं॰ अनशन ब्रत आरम्भ किया और उसी में वह ई० सन् १७४१ आरम्भ में इस लोक से विमुख हो चल बसे।